सिद्धयोग

संस्थापक :
…ीगयोगेश्वर भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई 283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 48, अंक : 09
दिसम्बर 2015

अमृत कण

अनागतविधाता च प्रत्युपन्नगतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।।

— चाणक्य सूत्र

वह महान् है, जो संकट की पूर्वकल्पना से ही अपने बचाव के सभी उपाय कर लेता है और जिसे विपत्तियों या दुःख के आगमन पर आत्मरक्षा का उपाय सूझ जाता है, ऐसा व्यक्ति दोनों ही दृष्टि से अपने सुख की वृद्धि करता है। किन्तु जो व्यक्ति भाग्य के वश में होकर चलता है या यह मानता है कि जो भाग्य में लिखा है वही होगा, उसका विनाश अवश्यंभावी है।

यथातथ्योपदेशेन कृतार्थः सत्वबुद्धिमान्।
आजीवमपि जिज्ञासुः परस्तत्र विमुह्यति।।

— अष्टावक्र गीता

सत्व बुद्धि वाला व्यक्ति जैसे–जैसे यानि थोड़े से उपदेश से भी कृतार्थ हो जाता है, जबकि असत्व बुद्धि वाला व्यक्ति आजीवन जिज्ञासा करके भी उसमें मोह को ही प्राप्त होता है।

पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्याऽन्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।।

— कालीदास

कोई वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ नहीं होती और न कोई वस्तु नवीन (आधुनिक) होने से ही श्रेष्ठ होती है। विवेकयुक्त व्यक्ति ज्ञान से परीक्षा करके ही दोनों में से श्रेष्ठ को स्वीकार करते हैं, जबकि मूढ़ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विश्वास के अनुसार चलता है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अग्नि से तपाये जाने पर जैसे धातु का मल जल जाता है, उसी प्रकार प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सारे दोष दग्ध हो जाते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

वर्ष: 48 अंक : 9

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च।।
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्टे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने।।
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे।।

देवाधिदेव, पुराण पुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्म को नमस्कार है। सृष्टि करने वाले तथा सभी अर्थों के ज्ञाता स्वयंभू ! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा, परमात्मा को नमस्कार है। विश्व के उत्पत्ति स्थान, देवों के हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णु को नमस्कार है।

दिसम्बर 2015

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्दमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय – डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी	9
3.	श्रीमद् भागवत में योग परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह	12
4.	योगासनों का अभ्यास लोक – श्री दिनेश चन्द शर्मा	15
5.	चन्दा तारों से भी ऊँचा – श्री जगदीश राए बंसल	18
6.	योग–आसन	19
7.	मंत्र और हृदय – श्री सत्य प्रकाश शर्मा	20
8.	गुरुमंत्र की शक्ति अपार – श्री विजय शर्मा	22
9.	प्रभु जी ने लगाई यमदूतों को फटकार – श्री जगदीश राए बंसल	23
10.	काल–विवेचन – पं. श्री गोपी नाथ जी	28
11.	ज्ञान की सात भूमिकाओं में छुपा योग – डॉ. जे.पी.शर्मा	35

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 170.00
द्विवार्षिक	: रु. 320.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

• विशेष लेख

योग साधना का लक्ष्य

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग शास्त्र के ग्रन्थों में योग साधना का लक्ष्य बड़ा सूक्ष्म और गहरा बताया गया है। वहाँ योग-साधना का लक्ष्य '**पुरुष प्रकृति विवेक**' है। '**सत्व-पुरुषयोशुद्धि साम्ये कैवल्यम्**' अर्थात् जहाँ पर प्रकृति पुरुष का शुद्धि साम्य हो जाये पुरुष (आत्मा) अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाये और बुद्धि अपने कारण मूल प्रकृति में लय हो जाये, उसे शुद्धि साम्य कहते हैं। यही 'कैवल्य' कहलाता है। केवली भाव अर्थात् अकेलापन (परम एकांत)। मैंने बुद्धि और पुरुष का सम्बन्ध बताया था। आत्मा निर्मल ज्योति है, बुद्धि जड़ है आत्मा के सामने बुद्धि आई। आत्मा की चेतनता बुद्धि पर पड़ी और बुद्धि ने अपना रूप आत्मा को दिखा दिया। इससे आत्मा बुद्धि बोधात्मा अथवा प्रत्ययानुपश्य बन गया। उदाहरण देकर मैंने समझाने का प्रयत्न किया था, जैसे कि निर्मल ज्योति के सामने लाल शीशा आ जाये ज्योति लाल दिखाई देती है, पीला शीशा आ जाये ज्योति पीली दिखाई देती है। जड़ और चेतन की गाँठ। प्रत्ययानुपश्य को खत्म करना ही योग दर्शन का लक्ष्य है। निर्बीज समाधि के अन्दर द्रष्टा पुरुष अपने स्वरूप में रहा करता है '**तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**' निर्बीज समाधि में द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। वह स्वरूप प्रतिष्ठा कैसे होती है ? इसका उत्तर जैसा कि चितशक्ति का केवल्य में रहना। भगवान् ने गीता में आत्मा के स्वरूप को बताया है।

' अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्ले द्योऽशोष्य एव चा

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।। "

यह अच्छेद्य है, अर्थात् इसको काटा नहीं जा सकता अदाह्योऽयम् 'इसे जलाया नहीं जा सकता, अक्लेद्यो' इसे जल गीला नहीं कर सकता, अशोष्यः' इसे वायु सुखा नहीं सकती। यह आत्मा नित्य है, सर्वव्यापी है, एक जैसे रहने वाला है, अचल और सनातन है। समाधि के अतिरिक्त अर्थात् व्युत्थान काल में आत्मा 'वृत्ति सारुप्यमितरत्र' के अनुसार वृत्ति सारुप्य' अवस्था को प्राप्त हो जाती है। '**सदृशम् चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञनवानपि**' ज्ञानी लोग भी अपने

अपने स्वभाव के अनुसार चेष्टायें किया करते हैं। सृष्टि में गुण विस्तार के कारण भिन्नता है। भगवान् राम का स्वभाव दूसरे प्रकार का है, भगवान कृष्ण का स्वभाव दूसरे प्रकार का है, भगवान शिव का स्वभाव कुछ और प्रकार का है। दुर्वासा ऋषि का स्वभाव कुछ और प्रकार का है- उनका क्रोधी होना प्रख्यात है। ये सब उनका आत्मिक विकार नहीं है, बुद्धि के धर्म हैं जिसमें वर और शाप दिया करते हैं। यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। मैंने तुम्हें चित्त की पाँच प्रकार की भूमियाँ कई बार समझाई हैं। इनमें सबसे पहले 'मूढावस्था' वाले प्राणी होते हैं। ये तमोगुण प्रधान प्राणी होते हैं। मनुष्य में ऐसे प्राणी दूसरों को कष्ट देते हैं लडाई झगड़ा करते हैं, अथवा 'प्रमादालस्य एवं निद्रा में ही पड़े रहते हैं। दूसरे होते हैं 'क्षिप्तावस्था' के प्राणी ऐसे प्राणियों का चित्त पूर्णतया रजोगुण से व्याप्त रहता है। इनकी भी पारमार्थिक प्रकृति नहीं होती है। इन लोगों का ईश्वर में, सिद्धों में, लोक परलोक में विश्वास नहीं होता। **'यावत् जीवेत् सुख जीवेत ऋणं कृत्वा धृतम् पिवेत्'** का इनका सिद्धान्त होता है। इन्द्रिय सुख में लगे रहते हैं अन्याय से बने अथवा किसी की हत्या करके भी धन मिलता हो तो उस में भी ऐसे लोग पीछे नहीं रहते। तीसरी भूमि के प्राणी 'विक्षिप्तावस्था' के होते हैं। **"क्षिप्ता विशिष्टम् विक्षिप्तम्"** क्षिप्तावस्था से जो श्रेष्ठ होते हैं वे विक्षिप्तावस्था वाले होते हैं। इनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुणत्तमोगुण गौण रहा करते हैं। सतोगुण प्रधान होने से इस श्रेणी के प्राणी श्रद्धालु हुआ करते हैं। **'श्रद्धा चेतस: सम्प्रसाद:'** अर्थात् चित्त की प्रसन्नता ही श्रद्धा है। श्रद्धा, योगी की माँ की तरह रक्षा करती है। श्रद्धा के उदय होने पर सतोगुण का विकास होगा। धीरे-धीरे उसमें दैवी सम्पत्ति आ जायेगी भगवान् ने गीता में दैवी सम्पत्ति का फल बताया है **'दैवी सम्पद्धिमोक्षाय'** अर्थात् दैवी सम्पत्ति मुक्ति का कारण बन जाती है।

विक्षिप्तावस्था वाले मनुष्यों में श्रद्धा होती है, इस कारण से परमार्थ में उनकी प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। चौथी श्रेणी के लोग 'एकाग्रावस्था' वाले होते हैं। इनमें सतोगुण का पूरा पूरा विकास हो जाता है। यहीं से योग प्रारम्भ होता है। इस से पहले की तीन अवस्थाओं में योग नहीं माना गया। इस अवस्था के उदय होने पर मनुष्य अन्तर्मुखी बन जाता है। रुहानी दृश्य सामने आते हैं। **'ईशाद्या: सकला: देवा: दृश्यन्ते परमात्मनि'** अर्थात् उस परम तेज ईश्वर के अन्दर सभी देवी देवता दिखाई दिया करते हैं। निर्बीज में माया का बीज समाप्त हो जाता है। तब योगी अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। मैंने तुम्हें पिछले व्याख्यानों में यह भली प्रकार से समझाया था

कि योगी दो प्रकार के होते हैं। '**भव प्रत्यय**' वाले तथा दूसरे '**उपाय प्रत्यय**' वाले। " **भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्** " अर्थात् विदेह कोटि के देवता तथा प्रकृति लीन योगियों को भव प्रत्यय होता है। भव प्रत्यय वाले को जन्म से ही योग की प्रतीति होती है। भव प्रत्यय वाले यह समझते हैं कि हमें कैवल्य की प्राप्ति हो गई है। 'कैवल्य पदमिव अनुभवन्त: अर्थात् कैवल्य पद का अनुभव सा करते हैं। किन्तु उन्हें अभी कैवल्य प्राप्त नहीं होता क्योंकि, तब तक उनके पास अनुभव करने वाला मन और बुद्धि रहते हैं। अत: चित्त अधिकार अर्थात् बीज वाला है। अधिकार में पुनरावर्तन हुआ करता है। विदेह देवता देह धर्म से आगे हो गये होते हैं ये ब्रह्मलोक के जीव हुआ करते हैं। उनको तो संकल्प से ही ज्ञानेन्द्रियाँ हो जाती हैं। '**जिघ्रन् नासिका भवति**' यदि वे सूँघना चाहे तो नासिका अपने आप हो जाती हैं। '**पश्यन् चक्षुर्भवति**' अर्थात् देखना चाहें तो आँखें ही आँखें हो जाती हैं। '**स्पर्शन्त्वग् भवति**' यदि किसी को छूना चाहें तो त्वक् हो जाती है अर्थात् दूर दर्शन दूर श्रवण की योग्यता इनमें स्वाभाविक हुआ करती हैं। संकल्प से ही आँख, कान, नासिका आदि हो जाते हैं। मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति सीमित हैं। भगवान ने गीता में योगियों के लिये साधना क्रम अथवा कोर्स इस प्रकार बताया है।

" इन्द्रियाणि पराण्याहु: इन्द्रियेभ्यो परंमन:।

मनसस्तु पराबुद्धि: यो बुद्धे: परतस्तु स: ।। "

अर्थात् पहले योगी इन्द्रियों का साक्षात्कार करे इसके पश्चात् मन का साक्षात्कार करे, फिर बुद्धि का साक्षात्कार करे और बुद्धि से परे उस आत्मा का साक्षात्कार करे। इन्द्रियाँ हमारी पूरी शक्ति वाली नहीं हैं। वस्तुत: तो इनका दायरा बहुत ज्यादा नहीं है। लेकिन, योग-साधना से ही इसके दायरे को विस्तृत बनाया जाता है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ कहाँ से उत्पन्न हुई, इसे जानो ! देखो ! घ्राणेन्द्रिय का सम्बन्ध गंध तन्मात्र से है। '**तत्र गन्धवती पृथ्वी** अर्थात् पृथ्वी में गन्ध है। जब योगी योग साधना से घ्राणेन्द्रिय का साक्षात्कार करेगा तो जहाँ-जहाँ तक गन्ध तन्मात्र है वहाँ तक के सुगन्ध या दुर्गन्ध को योगी ग्रहण कर ले, तब समझ लेना चाहिये कि घ्राणेन्द्रिय का साक्षात्कार हो गया। साधारण मनुष्य जीभ से खट्टे मीठे स्वाद का ही अनुभव करता है। किन्तु, साधना से जब हम रसनेन्द्रिय का साक्षात्कार करेंगे, तो जहाँ तक जल है, क्योंकि जीभ की उत्पत्ति जल से है, चाहे वह व्यक्त रूप में हो अथवा अव्यक्त रूप में, वहाँ तक के सारे रस का साक्षात्कार हो जायेगा। इसी प्रकार आँखों का सम्बन्ध अग्नि से है। रूप तन्मात्र अग्नि का कारण है। अग्नि

जहाँ तक है वहाँ तक आँखों से देख सकता है। तुम यह जानते हो कि अग्नि सब जगह है, जल में भी अग्नि है पत्थर में दीवार में अग्नि सर्वत्र विद्यमान है। जब योगी नेत्रेन्द्रिय का साक्षात्कार कर लेता है तो उसे हजारों मील दूर की दिखाई दे जाती है अथवा जहाँ तक अग्नि का दायरा है वहाँ तक सभी कुछ देख लिया करता है। इसी प्रकार से त्वग् से दिव्य स्पर्श का अनुभव करता है। शब्द तन्मात्र कर्णेन्द्रिय का विषय है। आकाश जहाँ तक है ब्रह्माण्ड में जितने भी शब्द हैं, उन शब्दों को, कर्णेन्द्रिय के साक्षात्कार हो जाने पर सुन सकते हैं। मैं अपने एक गुरु भाई को जानता हूँ, जिन्होंने ऋषिकेश बैठे-बैठे ही बरसाने में हो रही घटना को देख लिया था और दण्ड भी दिया था। श्री प्रभु जी के चरणों में ऐसे अलौकिक चरित्र हम लोग दिन रात देखा करते थे। उनके कई बच्चों में भी ऊँची-ऊँची स्थिति वाले व सामर्थ्य वाले थे। अखिलात्मा भगवान ने गीता में युक्त योगी के लक्षण बताएँ हैं -

' ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ।।'

ज्ञान तृप्तात्मा वह होता है, जिसने प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ कर प्रकृति पर हुकूमत प्राप्त कर ली हो और विज्ञानतृप्तात्मा वह होता है जिसने पूर्ण रूप से आत्म साक्षात्कार कर लिया हो वह विज्ञानतृप्तात्मा कहलाता है। मिट्टी पत्थर सोना जिसके लिये समान है, वह युक्त योगी कहा गया है। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी नैपाल हिमालय से आकर अपने ध्यानी बच्चों को, ध्यान में बैठाया करते थे। उनका पहला काम था कि ध्यान में पहले भूमण्डल के सारे दृश्यों को दिखाया करते थे, पाँच भौतिक दृश्य-आग्नेय समुद्र आदि-आदि दिखाने के साथ-साथ गन्धर्व पितर-स्वर्गादि लोकों को दिखाते थे। तत्पश्चात् उन में से निकाल कर उसे आत्मदर्शन की ओर ले जाया करते थे। यह प्रभु जी का ध्यान अभ्यास कराने का क्रम था। हमारे भी ध्यानाभ्यासी बच्चे ऐसे हुये हैं। मैं तुम्हें रमण गिरी साधु के विषय में बताया करता हूँ। वह संन्यासी था। हमारे पास आकर योग दीक्षा ली। भगवान शंकर की आराधना पहले करता था। श्री प्रभु जी की कृपा से ध्यान स्थिति ऊँची बढ़ गई। वह भी लोक लोकान्तर में जाया करता था। स्वर्ग में इन्द्र सभा में जाया करता था। हमारे आश्रम में आने जाने वाले साधकों में ही एक नत्थू राम काका थे। अच्छे साधक थे वह भी एक बार राम लीला के दिनों में नत्थू राम ने उस महात्मा से कहा- चलो !नागे!तुम्हें राम लीला दिखा कर लायें। महात्मा कहने लगा- काका जी !तुम राम

लीला देखने जाओ और मैं तुम्हें देखूँगा। तुम क्या-क्या करते हो और कहाँ जाते हो। ऐसा कह कर वह ध्यान में बैठ गया और सूक्ष्म शरीर से उसके साथ हो लिया। सारा दृश्य देखता रहा। जब नत्थू राम वापिस लौटे तो रमणी गिरी कहने लगा- काका जी बताऊँ आश्रम से जाने के बाद तुम कहाँ- कहाँ गये और क्या- क्या किया। उन्होंने कहा' बता ! हमने क्या-क्या किया।' महात्मा ने कहा- सबसे पहले आश्रम से बाहर निकलने के बाद तुमने एक बीड़ी पी ! उसके पश्चात् रास्ते में एक जगह पर ठन्डाई भांग की बन रही थी, एक गिलास पी। उससे आगे तुम्हें ठा. घमण्डी सिंह मिल गया, तुम उसके साथ-साथ बाजार गये। आपस में मजाक करते हुये जा रहे थे। उसके बाद एत्मादपुर पहुँच कर राम लीला देखने लगे। तुम्हें भीड़ के कारण खड़े होने को जगह नहींक मिल रही थी, इसलिये तुम ला.भगवान दास की दुकान पर चढ़ गये। राम लक्ष्मण की बारात निकल रही थी। इस में लक्ष्मण जी नीलवर्ण के थे और राम जी गौर-वर्ण के थे। इस तरह से राम की बारात देखने के बाद तुम फिर वापिस आये ! आश्रम से दूर ड़ोरे (सीमा) के पास तुमने बीड़ी पीकर लघुशंका की और इस तरह से आश्रम वापिस आ रहे हो। नत्थू राम ने मान ली कि वास्तव में बात ज्यों की ज्यों सत्य है। वह साधु स्वर्ग के दृश्यों को देखने लगा था। मैंने तुम्हें पहले भी बताया हुआ है कि जब योगी सम्प्रज्ञात की दूसरी श्रेणी में पहुँचता है, तब उसके मार्ग में देवता अन्तराय पैदा कर दिया करते हैं, तब उसे भ्रान्ति दर्शन होने लगता है। उसके साथ भी यही हुआ देवताओं ने उससे कहा तुम वृन्दावन में कुसुम सरोवर पर आ जाना, वहाँ तुम्हें यह देव कन्या मिलेगी।' वह चुपचाप आश्रम से बिना किसी को बताये वृन्दावन चला गया, वहाँ तीन दिन व तीन रात तक भूखा प्यासा पड़ा रहा। किन्तु कहीं देव कन्या नहीं आयी। हाँ वहीं की किसी लड़की से सम्पर्क हो गया और भ्रष्ट हो गया। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि उत्थान तो होता है, किन्तु साधक सङ्गदोष से बचा रहे। '**निर्मानमोह जित सङ्गदोषाः**' यह भगवान का साधक के लिये संकेत है। यदि साधक जितेन्द्रिय नहीं है, तो शक्ति उसका साथ छोड़ देती है। शरीर में वीर्य ही ब्रह्म है। ब्रह्मचर्य का फल योग दर्शन में लिखा है कि **ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुं समर्थो भवति** अर्थात् एक ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में शक्ति पात कर सकता है। किन्तु जो इन्द्रियलोलुप हैं, वह शक्ति पात नहीं कर सकता। अस्तु ! मैं तुम्हें भव प्रत्यय वाले योगियों के विषय में बता रहा था। विदेह देवता और प्रकृतिलीन योगी पुनः जन्म लेकर भव प्रत्यय की श्रेणी में आते हैं। प्रकृतिलीन वे होते हैं जो गन्धतन्मात्र में लय हो जाते हैं, रूप तन्मात्र में

लय हो जाते हैं, रस तन्मात्र में लय हो जाये या बुद्धि के सात्विक महा भावों में लय हो जायें यह भी प्रकृतिलयता है। वह बुद्धि के धर्मों में लय हो जाता है। अपने इष्टदेव को सर्वत्र देखता है। अन्त में समझ लेता है। **'प्राप्तं प्रापणीयं, छिन्नः श्लिष्टपर्वः भव संक्रमः'** अर्थात् जो प्राप्त करनी चाहिये वह मैंने प्राप्त कर लिया है। पीढ़ी दर पीढ़ी स्थित इस जन्म चक्र को मैंने काट दिया है। किन्तु योगियों में एक विशेष बात यह होती है कि वह किसी से कुछ माँगते नहीं हैं। वे लोग अपने अन्दर शक्ति पैदा करते हैं, जिनसे वरदान व शक्ति लेते हैं वह भी योगी ही होते हैं। साधना करते – करते ये लोग भी शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं। सिद्धता को प्राप्त हो जायेंगे। 'ईश्वर' को महासिद्ध कहा जाता है। वह अनादिसिद्ध हैं। क्लेश कर्म विपाक एवं आशय के चक्कर में जो कभी आया ही नहीं, उसे ईश्वर कहते हैं। दूसरे योगी भी साधना करते – करते क्लेश कर्म से छूट जाते हैं। निर्बीज समाधि तभी होगी जब वे क्लेश बंधन से पूर्ण रूप से छूट जायेगें। योगी क्लेश बंधन से छूटने के लिये ही सारा पुरुषार्थ करता है। योग ही ऐसी विद्या है जिसके जान लेने पर सभी कुछ जाना जा सकता है।

'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातंभवति'

सर्वज्ञता, एवं सर्वव्यापकता योग से ही संभव है। इसलिये तुम सब अपने आप को योग ध्यान परायण बनाओ। जब तक शरीर में रजोगुण, तमोगुण रहेगा तब तक मृत्यु के समय प्राण का घर्षण होगा ही होगा। उस घर्षण के दु:ख में न कृष्ण चन्द्र याद आयेगें, न कोई और याद रहता है। उस समय प्राणों के घर्षण के समय शुभ चिन्तन नहीं होगा। अशुभ चिन्तन से **'अधो गच्छन्ति तामसाः'** के अनुसार निम्न योनियों में प्राणी चला जाता है। किन्तु जो ध्यानयोगी हैं उनमें सतोगुण की वृद्धि हो जाने के कारण, शुभ्र प्रकाश में शरीर छोड़ते हैं, सद् गति को पाते हैं इसलिये अपने को योग ध्यान परायण बनाओ। जो इस मार्ग में बढ़ेंगे, वे सर्व शक्तिमान उनकी अवश्य सहायता करेंगे। बार–बार आशीर्वाद।

(चण्डीगढ़ 03 अक्टूबर 1987)

●●●

श्री मद्वाल्मीकीय रामायण एवं योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(गतांक से आगे)

(पिछले अंक में आप ने पढ़ा था कि श्री राम ने अपने पिता दशरथ से दुःख संतप्त माता कौशल्या की सब प्रकार से रक्षा करने की बात कही थी। इस अंक में हम पढ़ेंगे कि माता कौशल्या अपनी पुत्र वधू सीता को उपदेश देती हुई कहती है कि स्त्री को अपने पति को देवता समझकर उनकी सेवा करनी चाहिये। जो स्त्री अपने पति की इच्छा के विपरीत चलती है वह कुलटा या असति कहलाती है। लाखों वर्ष पूर्व दिया गया यह उपदेश स्त्री समाज के लिये आज भी अनुकरणीय है। स्वयं को विकसित मानने वाले इस आधुनिक युग में भी नारी धर्म को कैसे व्यवहार में लाया जा सकता है इस बात का संकेत मिलता है। सीता ने स्वयं अपने मुख से कहा है कि पति ही नारी का एकमात्र हितैषी एवं कल्याण के मार्ग पर लगाने वाला होता है। पिता, भाई और पुत्र स्त्री को परिमित सुख देते हैं किन्तु पति स्त्री को अपरिमित सुख देता है। सीता ने कहा स्त्री धर्म का उपदेश मुझे बाल्यकाल में माता ही आदि के द्वारा मिला है। मैं आप की आज्ञा के अनुसार ही चलूँगी। माता कौशल्या सीता के इन वचनों को सुनकर हर्षित होती है।)

– सम्पादक

श्री राम को मुनिवेष धारण किये देखकर राजा दशरथ स्त्रियों सहित अचेत हो गये। दो घड़ी तक अचेत रहने के पश्चात जब उन्हें होश आया तब वे श्री राम का चिन्तन करते हुये दुःखी होकर विलाप करने लगे। वे कहने लगे, 'मालूम होता है कि मैंने पिछले जन्म में अवश्य ही बहुत सी गौओं को उनके बछड़ों से विछोह कराया है अथवा अनेक प्राणियों की हिंसा की है, इसी से मेरे ऊपर यह संकट आ पड़ा है। समय पूरा हुये बिना किसी के प्राण नहीं निकलते तभी तो कैकयी के द्वारा दिये गये इतने कष्ट पाने पर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है। ओह ! अग्नि के समय तेजस्वी पुत्र को महीन वस्त्रों को त्याग मुनियों के वल्कल वस्त्र धारण किये सामने देख रहा हूँ फिर भी मैं जीवित हूँ। सभी लोग कैकयी के द्वारा कष्ट पा रहे हैं यह सोचकर राजा दशरथ ' हे राम ! ' ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गये आगे कुछ बोल न सके।

कुछ देर बाद होश आ जाने पर सुमन्त्र को बुलाकर राजा दशरथ बोले, ' सुमन्त्र ! अब तुम सवारी के योग्य एक रथ को उत्तम घोड़े जोतकर यहाँ ले आओ और श्री राम को उसमें बिठाकर इस जनपद से बाहर पहुँचा आओ '। राजा की आज्ञा पाकर सुमन्त्र तुरन्त उत्तम घोड़ों से युक्त रथ ले आये और बोले, महाराज ! श्री राम के लिये उत्तम घोड़ों से युक्त सुवर्ण भूषित

रथ तैय्यार है। इसके पश्चात राजा दशरथ ने कोषाध्यक्ष को बुलाकर कहा – तुम विदेह कुमारी सीता के पहनने योग्य बहुमूल्य वस्त्र और बहुत से आभूषण गिनकर लाओ जो चौदह वर्षो तक के लिये पर्याप्त हों '। महाराज की आज्ञा पाकर कोषाध्यक्ष ने सभी वस्तुयें लाकर शीघ्र ही सीता को समर्पित कर दिया। सीता ने सुन्दर आभूषण पहन लिये। जैसे सूर्य की प्रभा आकाश को प्रकाशित कर देती है उसी प्रकार सीता सुशोभित हुई। माता कौशल्या ने उसे अपनी छाती से लगाकर कहा – बेटी ! जो स्त्रियाँ अपने प्रियतम पति के द्वारा सम्मानित होती हैं और संकट पड़ने पर उनका आदर नहीं करती हैं तथा अवज्ञा करती हैं वे सम्पूर्ण जगत में असति या दुष्टा के नाम से पुकारी जाती हैं। दुष्ट नारियों का यह स्वभाव होता है कि पहले तो पति द्वारा यथेष्ट सुख भोगती हैं परन्तु जब वे थोड़ी संकट में पड़ जाते हैं तो उनमें दोषारोपण करती हुई साथ छोड़ देती हैं।

पढ़िये निम्न श्लोक –

एष स्वभावो स्त्रिणामनूभय परा सुखम्
अल्पामप्यापदं प्राप्य दुष्यन्ति प्रजहत्यपि

कौशल्या ने आगे कहा – जो झूठ बोलने वाली, विकृत चेष्टा करने वाली, दुष्ट पुरुषों से संसर्ग रखने वाली, पति के प्रति सदा हृदयहीनता का परिचय देने वाली, कुलटा, पापवृत्ति वाली, छोटी सी बात के लिये भी क्षण में विरक्त हो जाने वाली ये सब की सब कुलटा या असति स्त्रियाँ कहलाती हैं। उत्तम कुल, किया हुआ उपकार, भूषण आदि का दान, पति का पूर्ण स्नेह ये सब दुष्टा स्त्रियों के हृदय को वश में नहीं कर पाते क्योंकि उनका चित्त अव्यवस्थित होता है। इसके विपरीत जो सत्य, सदाचार शास्त्रों की आज्ञा और कुलोचित मर्यादाओं में दृढ़ रहती हैं, उन साध्वी स्त्रियों के लिये एकमात्र पति ही परम पवित्र एवं श्रेष्ठ देवता है। निम्न श्लोक पढ़िये –

साध्वीनां तु स्थितानां तु शीले, सत्ये, श्रुते स्थिते
स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते ।।

इसलिये बेटी ! तुम मेरे पुत्र श्री राम का, जिन्हें वनवास की आज्ञा मिली है, कभी अनादर नहीं करना। ये निर्धन हों या धनी तुम्हारे लिये देवता के समान हैं। माता कौशल्या के इन पवित्र वचनों को सुनकर सीता ने हाथ जोड़कर कौशल्या से कहा – आर्ये ! आप मेरे लिये जो उपदेश दे रही हैं, उनका पूर्णतया पालन करूँगी। स्वामी के साथ कैसा वर्ताव करना चाहिये, ये मैं भली भाँति जानती हूँ। इस विषय में मैंने पहले ही खूब सुन रखा है। पूजनीय माता जी ! आप को मुझे असती स्त्रियों के समान नहीं समझना चाहिये। क्योंकि जैसे प्रभा चन्द्रमा से दूर नहीं हो सकती, बिना तार के वीणा नहीं बज सकती, बिना पहिये का रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार माता सौ बेटों की माता होने पर भी बिना पति के स्त्री सुखी नहीं रह सकती। सीता आगे फिर कहती है, पिता, भ्राता और पुत्र ये परिमित सुख देते हैं परन्तु पति अपरिमित सुख देता है। उनकी सेवा से इहलोक व परलोक दोनों में स्त्री का कल्याण है अतः ऐसी कौन बुद्धिमान स्त्री है

जो पति का सत्कार व पूजा न करे। पढ़िये निम्न वाक्य –

मितं ददाति हि पिता , मितं भ्राता मितं सुत:

अमितस्य तु दातारं भर्तारम का न पूजयेत।।

आर्ये ! मैंने श्रेष्ट स्त्रियों तथा अपनी मातादि के मुख से नारी के सामान्य और विशेष धर्मों का श्रवण किया है। इस प्रकार से पातिव्रत्य धर्म का महत्व जानकर भी मैं पति का अपमान कैसे कर सकती हूँ ? मैं जानती हूँ कि स्त्री का पति ही परम देवता होता है। सीता के मधुर वचनों को सुनकर माता कौशल्या के नेत्रों में सहसा हर्ष एवं शोक के आँसू बहने लगे।

तत्पश्चात परम धर्मात्मा श्री राम ने माताओं के बीच में अत्यन्त सम्मानित होकर खड़ी हुई माता कौशल्या की ओर देखकर कहा – माँ ! यह सोचकर कि इन्हीं के कारण मेरे पुत्र को वनवास हुआ है, पिता जी की तरफ दुःखित होकर नहीं देखना। वनवास की अवधि भी समाप्त हो जायेगी। माता जी को इस प्रकार समझाकर श्री राम ने साढ़े तीन सौ माताओं की ओर दृष्टिपात किया और उनको भी कौशल्या की भाँति सान्त्वना दी। श्री राम ने माताओं से कहा – माताओ ! सदा साथ रहने के कारण मैंने कभी कठोर वचन कह दिये हों अथवा अनजाने में भी मुझ से गलती हो गई हो तो उसके लिये आप सब क्षमा करें। मैं आप सब माताओं से विदा माँगता हूँ। श्री राम के इन वचनों को सुनकर सभी का चित्त शोक से व्याकुल हो गया। वे सब विलाप करने लगीं।

उनका यह आर्तनाद सारे राजभवन में गूँज उठा। राजा दशरथ का भवन जो पहले मुरज, पणव और मेघ आदि वाद्यों के गंभीर घोष से गूँजता था वही विलाप और रोदन से व्याप्त हो गया।

तत्पश्चात श्री राम, लक्ष्मण और सीता ने दीनभाव से राजा दशरथ के चरणों में प्रणाम किया और दक्षिणावर्त परिक्रमा की। उनसे विदा लेकर श्री राम ने सीता सहित माता के चरणों में प्रणाम किया और वन गमन के लिये उद्यत हो गये।

● ● ●

न तस्य मिथ्यार्थसमर्थनेच्छा

न संग्रहस्तज्जगतोऽपि दृष्ट:।

तत्रानुवृत्तिर्यदि चेन्मृषार्थे

न निद्रया मुक्त इतीष्यते ध्रुवम्।।

उसको (विद्वतजन को) न तो मिथ्या वस्तुओं को सिद्ध करने की इच्छा होती है और न उसके पास सांसारिक पदार्थों का संग्रह देखा जाता है। यदि फिर भी उसकी मिथ्या पदार्थों में प्रवृत्ति रहे तो निश्चय है कि वास्तव में उसकी नींद टूटी ही नहीं है।

श्री मद्भागवत् में योग परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

पिछले लेख में अंगिरा ऋषि द्वारा सम्राट चित्रकेतु से उसकी चिन्ता पूछने पर। चित्र केतु उन्हें सर्वज्ञ बताते हुये कहता है कि आप सब जानते हैं फिर भी पूछते हैं अत: मेरे को नि:संतान होने का दुख है। आप कृपा करके इसका निदान करिये –

भगवन् किं न विदितं तपोज्ञान समाधिभि:।

योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरन्त: शरीरिषु ।।23।। अ.14 स्क. 6

महर्षि अंगिरा ने राजा चित्रकेतु की रानियों में बड़ी कृतद्युति को प्रसाद दिया और कहा – राजन तुम्हें इस रानी से एक पुत्र होगा, जो तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही देगा।

कालान्तर में राजा को पुत्र लाभ हुआ। राजा बालक से लाड़–प्यार में ऐसे निमग्न हुये कि अन्य रानियों की उपेक्षा करदी। चित्रकेतु का सर्व प्रेम बच्चे की माँ कृतद्युति में था। अत: अन्य रानियाँ बच्चे एवं उसकी माँ के प्रति ईर्ष्या से भरकर षड़यंत्र द्वारा बच्चे को विष देकर मार दिया।

राजा चित्रकेतु अपार दु:ख सागर में पड़ कर विक्षिप्त हो उठे। बच्चे को देख–देखकर प्रलाप करते हुये, विधाता की क्रूरता पर प्रश्न करने लगे। रह–रह कर बेहोश हो जाते।

उस समय महर्षि अंगिरा एवं देवर्षि नारद पधारे। तात्विक बातों, उद्धरणों से राजा को समझाने लगे। ऋषि प्रवरों की वाणी से राजा चित्रकेतु को कुछ धीरज हुआ। शोक से विह्वल राजा ने कहा – हे अवधूत वेष में छिपकर यहाँ आये महान भाव ! मैं मूढ़बुद्धि हूँ। मुझे ज्ञान की ज्योति प्रदान करें।

श्री अंगिरा जी ने कहा – राजन जब पुत्र के लिये तुम चिन्तित थे, तब मैंने ही तुम्हें पुत्र दिया और यह महात्मन स्वयं श्री नारद जी हैं। पहली बार जब मैंने तुम पर प्रसन्न हो परम ज्ञान देना चाहा उस समय तुममें पुत्र प्राप्ति की उत्कट लालसा थी, अत: पुत्र दिया। परन्तु अनित्य पदार्थ क्लेश का कारण हुआ करता है। राजन ! तुम अपने मन को स्वस्थ करो और तुम मेरे द्वारा प्रदत्त मंत्रोपनिषद को एकाग्र मन से धारण कर सात रात्रि में ही भगवान संकर्षण का दर्शन प्राप्त करोगे। जिससे तुम्हें परम पद की प्राप्ति होगी –

एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम् ।

यां धारयन् सप्तरात्राद् दृष्टा संकर्षणम प्रभुम् ।।27।। अ.15, स्क.6

अध्याय सोलह में बताया गया है कि सिद्ध सद्गुरु की कृपा से जीव को परमपद लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाता है। देवर्षि नारद ने मृत राजकुमार के जीवात्मा को शोकाकुल स्वजनों के सामने प्रत्यक्ष बुलाकर कहा – जीवात्म ! तुम अपने मृत शरीर में आजाओ और शेष

आयु अपने पिता के दिये भोगों को भोगो।

जीवात्मा ने कहा – देवर्षि ! जीव नित्य और अहंकार रहित है। वह गर्भ में आकर जब तक जिस शरीर में रहता है, तभी तक उस शरीर को अपना समझता है। वह जीवात्मा इस प्रकार तात्विक बात कहकर चला गया। राजा चित्रकेतु का स्नेह-बंधन कट गया। विष देने वाली रानियों ने बाल हत्या का प्रायश्चित किया।

इसके पश्चात् श्री नारद जी ने " **ऊँ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमही** " का मंत्र जाप कराकर राजा चित्रकेतु को ध्यान विधि समझा कर ब्रह्मलोक चले गये। इधर राजा सात रात्रि में ही सिद्धमंत्र के प्रभाव से " **जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम** " का बोध व दर्शन प्राप्त कर भगवान के सहस्त्रशीर्षा रूप को बार–बार नमस्कार करता हुआ स्वयं विद्याधरों का अधिपत पद प्राप्त कर लिया।

प्रगट हुये भगवान अनन्त ने कहा – चित्रकेतु! नारद एवं महर्षि अंगिरा ने जिस विद्या का तुम्हें उपदेश दिया उससे और मेरे दर्शन से तुम भली भाँति सिद्ध हो चुके हो –

यन्नारदाङ्गि रोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम्।
संसिद्धोऽसि तया राजन् विद्यया दर्शनाच्च मे ।।50।। अ.16 स्क.6

यह मनुष्य योनि ज्ञान–विज्ञान का मूल स्त्रोत है। जो इसे पाकर अपने आत्मस्वरूप परमात्मा को नहीं जान लेता, उसे कहीं भी किसी योनि में शांति प्राप्त नहीं होगी –

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञान विज्ञान सम्भवाम।
आत्मानं यो न बुद्धयेत न कचिच्छममाप्नुयात् ।।58।। अ.16, स्कं.6

जो योगमार्ग का तत्व समझने में निपुण हैं, उनको भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि जीव का सबसे बड़ा स्वार्थ एवं परमार्थ यह है कि वह ब्रह्म और आत्मा की एकता का अनुभव करले। मेरे इस उपदेश को ठीक से धारण करोगे तो शीघ्र ही ज्ञान–विज्ञान से युक्त तुम सिद्ध हो जाओगे –

ऐतावानेव मनुजैर्योग नैपुण बुद्धिमी:।
स्वार्थ: सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ।।
त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम् ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि।।63–64।। अ.16, स्कं.6

चित्रकेतु पर इस प्रकार कृपाकर जगद्गुरु भगवान श्री नारायण वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

अब विद्याधर चित्रकेतु आकाश मार्ग से स्वच्छन्द विचरण करने लगा। महायोगी चित्रकेतु करोड़ों वर्षों तक सर्व संकल्प जयी रहे *" स्तूयमानो महायोगी मुनिभि: सिद्ध चारणै: "।*

एक दिन चित्रकेतु तेजोमय विमान पर आरुढ़ कहीं जाते हुये भगवान शंकर को पार्वती

जी को गोद में बैठाये हुये सिद्धों, मुनियों को उपदेश देते देखकर, भ्रमित हो गया और भगवती पार्वती को सुनाकर जोर–जोर से हँसने और कहने लगा –

एष लोकगुरु : साक्षाद्धर्म वक्ता शरीरिणाम् ।

आस्ते मुख्य : सभायां वै मिथुनीभूय मार्यया ।। 6 ।। अ.17, स्कं.6

ये सारे जगत् के गुरुदेव हैं इनकी यह दशा है कि भारी सभा में पत्नी को गोद में लिये बैठे हैं। भगवान शंकर चित्रकेतु के कटाक्ष सुनकर हँसने लगे कुछ बोले नहीं। परन्तु पार्वती जी चित्रकेतु की हिमाकत देखकर क्रोधित हो उठी और बोली– दुर्मते ! तुम श्री नारायण के आश्रित रहने के योग्य नहीं हो अतः तुम पापमय असुरयोनि में जाओ।

चित्रकेतु विमान से उतरकर माता पार्वती जी को करबद्ध प्रणाम करता हुआ बोला– माँ आपका शाप स्वीकार करता हूँ। यही विद्याधर चित्रकेतु दानव–योनि का आश्रय लेकर त्वष्टा के यहाँ पैदा हुये। इन्द्र को त्रास देने वाला असुर राज वृत्रासुर हुआ। परन्तु वहाँ भी ये भगवत्–स्वरूप के ज्ञान एवं भक्ति से परिपूर्ण रहे।

जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः।

वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञान विज्ञान संयुतः ।। 38 ।। अ.17, स्कं.6

● ● ●

योगासनों का अभ्यास लोक व परलोक दोनों के लिए कल्याणकारी

– श्री दिनेश चन्द्र शर्मा, आगरा

आजकल संसार में अनेक प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं। योगासनों के प्रति लोगों में तेज़ी से रूचि बढ़ रही है। विश्व भर में योगासनों को ख्याति मिल रही है। अनेक देशों में बड़ी संख्या में लोग योग कर रहे हैं। विश्व योग दिवस जैसे सफल आयोजन इसके सुखद उदाहरण हैं। योगासन भारत के ऋषियों महान योगाचार्यों की मानव मात्र के लिए अमर देन है। योगासनों का व्यायाम सभी प्रकार से उत्तम है।

योगासन करने से पारमार्थिक लाभ मिलता है और मन की एकाग्रता का जनक है। नाड़ी शुद्धि के लिए यौगिक व्यायाम परम उपादेय है। योगिक व्यायाम स्नायु मण्डल को कोमल और रस व रक्त का भली प्रकार से वहन करने वाले बनाते हैं और मन की एकाग्रता के दाता हैं।

विभिन्न प्रयोगों से यह परिणाम मिले हैं कि शरीर को निरोग, हल्का, फुर्तीला,ओजस्वी, तेजस्वी और वीर्य को शरीर में व्यापक बनाने के लिए योगासन बहुत उपयोगी हैं। योगासन आदि क्रियाएँ किसी योग–अभ्यासी या योग शिक्षक से शिक्षण प्राप्त करके करनी चाहिए जिससे कि पूर्ण लाभ मिल सके। विधिवत सीखे बिना करने से कठिनाई तथा हानि हो सकती है। इसीलिए कहते हैं कि " देखा देखी करे जो योग, छीजै काया बाढै रोग "। अत: विधिवत योग अभ्यास करके निरोग बनें।

योग के आठ अंग हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यम–नियमों का पालन विवेक ज्ञान का साधन है। यम–नियमों के बाद आसनों का स्थान आता है। योग के लिए सहायक तत्वों में आसनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि योग–आसनों से शारीरिक आरोग्यता तो प्राप्त होती ही है, साथ ही साधक के मानस स्वास्थ्य को भी लाभ मिलता है। आसन करने वाले साधक का शरीर स्वस्थ और लम्बे समय तक रहने वाला बन जाता है।

आसनों के नियमित अभ्यास के साथ जैसे – जैसे साधक आसन–बन्ध मुद्राओं का अभ्यास करता है वैसे – वैसे उसके शरीर में वीर्य व्यापक हो जाने से मन में असीम शान्ति का अनुभव और आत्म तेज की अभिवृद्धि होने लगती है। ग्रन्थो में विभिन्न आसनों से मिलने वाले परिणामों का विस्तार से वर्णन मिलता है। योगासनों में इस प्रकार के आसन भी हैं, जिनका अनवरत अभ्यास करने से महाशक्ति कुण्डलिनी जागृत हो जाती है और मनुष्य सामर्थवान बन जाता है।

योगासन शरीर की आरोग्यता को बढाते हैं, साथ ही प्राणायाम की साधना में भी सहायक होते हैं। भगवान पतंजलि देव ने प्राणायाम से पूर्व आसन सिद्ध हेतु निर्देश दिया है।

प्राणायाम करने वाले साधक को प्राणायाम आरम्भ करने से पूर्व आसनों का भली प्रकार अभ्यास करने पर बल दिया गया है। अष्टांग योग में प्राणायाम से पूर्व आसन का निर्देश है।

आसन ऐसा साधन है जिसके माध्यम से मनुष्य प्राणायाम का सम्यक् लाभ उठा सकता है। आसन जय हो जाने के बाद योगी सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि के आघात से प्रभावित नहीं होता है और प्राणायाम का अधिकारी बन जाता है। साधक को आसन सिद्धी के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए। सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि के जोड़े को द्वन्द कहा जाता है। जिस व्यक्ति का आसन सिद्ध नहीं होता उसको सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास आदि सताते रहते हैं। द्वन्दों से सताये हुए व्यक्ति को साधना की पूर्णता में कठिनाई होती है। आसन सिद्ध का सबसे बड़ा लाभ फल इन द्वन्दों से न सताया जाना है। साधक को शास्त्रों में बताई विधि से आसन जय प्राप्त करने के लिए अनन्त समापत्ति अवश्य करनी चाहिए। आसनों को करने का पारमार्थिक लाभ यही है।

अनन्त समापत्ति का अर्थ है – अखण्ड मण्डलाकार व्यापक परमात्मा के रूप में अपने आपको विलीन कर देना । पूज्य गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने अनेक शिष्यों पर शक्तिपात किया और योगदीक्षा दी। शक्तिपात के फलस्वरूप शिष्यों को दो–तीन दनि तक और बाद में कई – कई घण्टे तक पत्थर की मूर्ति की तरह एक आसन पर बैठे देखा गया। इस प्रकार की दृढ़ स्थिति अनन्त समापत्ति का ही परिणाम था। जहाँ–जहाँ पर शक्तिपात दीक्षाएँ दी जाती हैं, वहा ँऐसी घटनाएँ स्वाभाविक ही घटती रहती हैं। सिद्धों की कृपा से अनन्त समापत्ति हो जाती है।

यौगिक व्यायामों में योगाचार्यों ने बहुत से आसन, बन्ध और मुद्राओं का उल्लेख किया है। योग योगेश्वर प्रभु श्री राम लाल जी महाराज ने इस प्रकार के व्यायाम अपने मन से प्रकट किए जिनमें सभी आसनों का सामान्यतः समुच्चय हो जाता है। इन साधनों के एक समुच्चय का नाम " जीवन तत्व साधन " है। प्रभु जी के इस दिव्य आविष्कार " जीवन तत्व साधन " से असंख्य लोगों को लाभ मिला है और निरन्तर इन साधनों का अभ्यास करने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। जीवन तत्व साधन में नौ क्रियाएँ हैं – सर्वोत्तान, स्कन्ध चालन, पग चालन, नाभि चालन, जानुप्रसार, बाल मचलन, बच्चे का ध्यान, नाड़ी संचालन और उत्क्षेपण सम्मिलित हैं। हर क्रिया के लिए समय का विभाजन किया गया है। ये क्रियाएँ सभी नर–नारियों के लिए परम उपयोगी हैं। गुरुदेव जी द्वारा श्री सिद्धगुफा संवाई से प्रकाशित **जीवन तत्व साधन** पुस्तक में विस्तार से जानकारी दी गई है।

गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने देश का व्यापक भ्रमण कर योग प्रचार कार्यक्रमों के आयोजन कर योग के दिव्य ज्ञान का प्रकाश जन जन तक फैलाया और " जीवन तत्व साधन " का अभ्यास कराया। " जीवन तत्व साधन " के अभ्यास से लोगों को मिले

चमत्कारी परिणामों की लम्बी श्रृंखला है। गुरुदेव का कहना है कि योग के पवित्र मार्ग का अवलम्ब लेने वाले साधकों को यह समझ लेना चाहिए कि दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति का परम साधन योग ही है। इससे ही साधक अपने नित्य स्वरूप और परम कल्याण को प्राप्त हुआ करता है।

योग ही दिव्य और अविनाशी जीवन है। श्रीमद् भगवत गीता में योग पर सर्वाधिक बल दिया गया है और बुद्धियोग, समाधि, समत्व, कर्मसु कौशलम आदि अनेक नामों से परिभाषित किया गया है।' तस्मात् योगी भर्वाजुन 'कहकर योगी बनने का उपदेश दिया है। योग का सम्यक विवेचन करते हुए भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने जीव को ब्रह्म से जुड़ने की क्रिया अथवा साधन " योग " को बताया है।

गुरुदेव ने देश के कौने–कौने में योग का प्रचार किया और योग के गूढ़ रहस्यों को बहुत ही सरलता से समझाया। आत्म कल्याण के इच्छुक साधकों को योग के सभी आठो अंगों का शनैः–शनैः निरन्तर अभ्यास करते हुए योग मार्ग में लग जाना श्रेयस्कर है।

●●●

योग प्रचार सत्संग मंडल वाराणसी का वार्षिक योग सम्मेलन सम्पन्न

वाराणसी, कछवा एवं मिर्जापुर योग प्रचार मंडल का टोरपुर योगाश्रम में आयोजित 29 अक्तूबर से 2 नवम्बर 2015 का कार्यक्रम बड़े ही हर्ष व उल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। टोड़रपुर में बने आश्रम के विशाल सत्संग में हजारों साधकों की उपस्थिति रहती थी। योग सिद्धान्तों पर प्रवचन देने वालों में श्री सिद्धगुफा संवाई आश्रम से आचार्य दासलाल मुख्य थे। अन्य वक्ताओं में वाराणसी के डॉ. विजय सिंह तथा भगवद् गीता के मर्मज्ञ एक वाराणसी के विद्वान आचार्य रहे। प्रातः काल 05 बजे ध्यानाभ्यास तथा योग आसनों के समय 600–700 साधक उपस्थित रहकर ध्यान, आसन, प्राणायाम, सूत्र नेति, अन्य षटकर्मों के अभ्यास में लगे रहे। वाराणसी मण्डल के साधकों ने इस कार्यक्रम में बड़े ही तन्मयता से कार्य किया। 02 नवम्बर को दोपहर भण्डारे के साथ ही कार्यक्रम सम्पन्न हो गया तथा सभी साधकों ने भाव – भीनी विदाई ली।

चन्दा तारों से भी ऊँचा

– श्री जगदीश राए बंसल " अधम "

चन्दा तारों से भी ऊँचा– मेरे गुरु का नाम है ।
सिद्धों के सरदार हैं वो – गुरु चन्द्र मोहन नाम है ।।

शरणा देते दीक्षा देते, भव भय हारी नियन्ता हो
शक्ति दाता मुक्ति दाता, योगों के योगी राजा हो
भाग्य विधाता योग योगेश्वर, योग का भण्डार है
चन्दा तारों .... ।।1।।

हमको अपना दास बना लो, बच्चे हम अनजान हैं
जब से आपके दर्शन पाए, हम बड़े धनवान हैं
आप की माया आप ही जानों, माया पति को सलाम है
चन्दा तारों .... ।।2।।

हमारी हालत खस्ता गुरु जी, यों ही ना हमें छोड़िए
अर्ज हमारी गुण लिजे – यों ना मुखड़ा मोड़िए
जगदाधार नाम आपका – हमरा तारण हार हैं ।
चन्दा तारों .... ।।3।।

भूमि का भार हटाने – कृष्ण बन कर आए हो
ग्वाल बालों के संग, गुऊएँ खूब चराए हो
सिद्ध गुरु सुख राशी का अधम को अरमान है ।
चन्दा तारों .... ।।4।।

● ● ●

स्वास्थ्य

योग-आसन

त्रिकोणासन

यह आसन भी पूर्ववत खड़े होकर ही किया जाता है, क्योंकि इसके करने से करने वाले के शरीर की आकृति त्रिभुजाकार बन जाती है। अतः इस आसन का नाम त्रिकोणासन है।

विधि – समान भाव से सीधे खड़े होकर अपने दोनों पैरों के मध्य में लगभग दो या तीन फुट का फैसला कर दें। किन्तु पैरों के तनाव में कोई कमी न आये, इसके बाद अपने आप को बाईं ओर झुका दीजिए, अपने बायें हाथ को बिल्कुल तनाव के साथ नीचे की ओर लाकर अपने बायें पैर के अंगूठे को स्पर्श कीजिए। यह ख्याल अवश्य रखें कि पैर एवं स्पर्श करने वाले हाथ में कोई शिथिलता न आए (कोई सिकन न पड़े) उधर अपने दाहिने हाथ को शिर के ऊपर से घुमाकर तनाव के साथ बाईं ओर झुकाकर सीधा रखे। इसी प्रकार से दूसरी ओर के पैर व भुजा से अभ्यास कर, प्रथम दिन के अभ्यास में पैर का अंगूठा न भी छुआ जा सके तो भी कोई बात नहीं, किन्तु तनाव में कोई शिथिलता न आए, इसी का नाम त्रिकोणास है।

लाभ– मेरुदण्ड पर तनाव पड़ने से रीढ़ की हड्डी में होने वाली बीमारियों के लिए लाभप्रद है। गृध्रसी आदि वायु इसके बराबर अभ्यास करने से दूर होती है। (गृध्रसीवात – जो वायु नितम्ब भाग से लेकर पाद तल तक बराबर कष्ट देती रहती है। बड़ा असह्य दर्द पैदा करती है। इसके अतिरिक्त उस गृध्रसी वायु के लिए ये आसन परम हितकर है) पाचन क्रिया सुधरती है, निरन्तर अभ्यास करने से भूख बढ़ने लगती है। शौंच खुलासा होने लगता है। जिनको इस प्रकार की तकलीफ हो उसके लिए यह आसन परम श्रेयस्कर है।

● ● ●

मंत्र और हृदय

– श्री सत्य प्रकाश शर्मा

(गतांक से आगे)

चूँकि बुध का शरीर के अंग स्थान हृदय तथा शनि–मंगल का कार्य शरीर में रक्त मज्जा को नियमित संचालित कर अग्नाशय को ऊर्जा प्रदान करना होता है ताकि शरीर में स्थित लीवर और पाचन क्रिया सुचारु रूप से कार्य कर सके। उन्होंने फिर आगे शोध कर बताया कि सौर मंडल अवस्थित नव–ग्रह प्राणी शरीर में स्थित सात चक्रों में बहने वाले वह सूक्ष्म पदार्थ (प्लाज्मा) जो शरीर की संरचना को निरन्तर नियमित करते हैं अपनी–अपनी निकलने वाली ऊर्जा तरंगों (इलेक्ट्रान) द्वारा समयानुसार प्रभावित करते रहते हैं, जिसके प्रभावमात्र के कारण शरीर कभी स्वस्थ कभी अस्वस्थ व क्षीण महसूस करने लगता है। प्राणीमात्र को इन अव्यवस्थित चुम्बकीय तरंगों से कैसे बचाया जाये। इसके लिए उन्होंने ग्रह विशेष के आकार–प्रकार निश्चित कर यांत्रिक विद्या का आविष्कार किया जिससे निकलने वाली ध्वनियों और नादों से प्रभावित शक्ति (ऊर्जा निरूपित चुम्बकीय तरंगें) जो सौर मंडल स्थित ग्रह–पिंडों के चुम्बकीय क्षेत्रों को प्रभावित करने के बाद उनसे निकलने वाली वह ऊर्जा तरंगें जो सौम्य तथा सुलभ बनकर शरीर में पैदा होने वाले जैव रसायनिक (प्लाज्मा) विजातीय तत्वों का निराकरण कर, स्वस्थ रख सके। इसी प्रकार फिर उन्होंने (आदि ऋषि) शारीरिक स्नायु जाल को भी जो बुध ग्रह से प्रभावित होते हैं। मंत्र–तंत्र क्रियाओं से उत्पन्न ग्राह्य ऊर्जा तरंगों द्वारा ठीक करने के लिए बताया जिससे मनुष्य में ओज, बल (इम्यूनिटी) एवं स्फूर्ति पैदा हो। यह थी उस काल की मंत्रों द्वारा पूर्ण व सौम्य शल्य चिकित्सा, जिनके प्रभाव मात्र से उस निश्चित स्थान के हारमोन्स में हलचल पैदा कर अंगों की शिथिलता दूर कर उन्हें ठीक किया जा सके। जो सर्व–सुलभ थी आज की तरह किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं जो अधिक खर्चीली होने के कारण आम आदमी नहीं अपना सकता। उन्होंने मंत्रों के साथ–साथ यज्ञों एवं अनुष्ठानों को भी प्रायोजित कर और उसमें प्रयोग में आने वाली सामग्रियों (जड़ी–बूटियों, खाद्यान्न एवं अन्य वह पदार्थ जो इन कार्यों के लिए उपयुक्त पाये गये निश्चित कर, अगर किसी कारणवश वातावरण दूषित हो जाता ठीक करने के लिए उपायों पर विशेष जोर दिया तथा अधिकतर जंगलों में पीपल, बड़, गूलर, पाकड़, नीम, अर्जुन, अशोक जैसे पेड़ों तथा

तुलसी के पौधों को लगवाने पर विशेष बल दिया जाता ताकि आज की तरह वातावरण प्रदूषित न हो, प्राणवायु (आक्सीजन) शुद्ध मिल सके, स्वच्छ जल के साथ – साथ खाद्यान्न भी पुष्ट मिले लेकिन इसके विपरीत आज वातावरण प्रदूषित होने के कारण वह सब चीजें जिनको हम उपयोग कर रहे हैं, यहाँ तक कि प्राणवायु भी प्रदूषित हो गई है। इसीलिये दिल की बीमारी में दिन प्रतिदिन बढ़ोत्तरी होने के लिए, यही प्रदूषित वातावरण पूर्णतया जिम्मेवार है। जिसको आज का चिकित्सक वर्ग भी मानने लगा है। इसलिए इन संदर्भों में अब असाध्य हृदय रोगियों को सोचना पड़ेगा कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ–साथ पूर्व में बताई गयी मांत्रिक विधियों को भी अपनाये जिससे निकलने वाली ऊर्जित चुम्बकीय तरंगों से पोषित भोज्य पदार्थों तथा उन ग्रह विशेष द्वारा अभिमंत्रित, अभिसिंचित जड़ी–बूटियों, खनिज लवणों के सेवन और यज्ञों अनुष्ठानों से प्राप्त शुद्ध वायु का इस्तेमाल कर उपरोक्त बीमारी से पूर्णतया मुक्त हुआ जा सके तथा पूर्ण ओज, बल (इम्यूनिटी) के साथ शरीर को स्फूर्तिवान बना जीवन को आनन्दमयपूर्वक जिया जा सके। इस पर सिद्धधाम संस्थान पूर्णरूप से कार्यरत है तथा समाज को एक निश्चित दिशा प्रदान कर उन रोगियों को निराशा से निकाल आशा की किरणों को प्रदान करने के लिए प्रयासरत है।

●●●

गुरुमंत्र की शक्ति अपार

– श्री विजय शर्मा, सहारनपुर

तर्ज - कह दो कोई ना करें यहाँ प्यार

गुरु मंत्र की महिमा अपार
कटे दुःख जंजाल, शक्ति का हो संचार

शब्द गुरु जो मुख से उचारे
पल-पल जप से भाग्य संवारे
शक्ति का मिले भंडार, होवें सुखी संसार

गुरु मंत्र .....

प्रभु कृपा से ये नर तन पाया
मन मुखता से जाल बनाया
दुख पावे हजार, सुने कोई ना पुकार

गुरु मंत्र .....

जग सपना यहाँ सब है पराया
सद्गुरु देव ने यही समझाया
जप की शक्ति अपार, होगा तेरा उद्धार

गुरु मंत्र .....

प्रभू जी ने लगाई यम दूतों को फटकार

– श्री जगदीश राए बंसल " अबम " फोन – 9212434003

सभी आदरणीय गुरु भाई बहिन जानते हैं कि काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले, प्राणी मात्र के तारणहार सर्व समर्थ्य विश्व नियन्ता महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज एवं प्रति पल स्मृणीय सिद्धयोगाधिपति अनादि महासिद्ध गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने प्यारे–प्यारे बच्चों का स्थान–स्थान पर प्रति पल तरह–तरह के कष्टों का निवारण कर रहे हैं। अनेक भाग्य शाली साधकों पर तो ऐसी असीम कृपा कर रहे हैं कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। हर कोई साधक विश्वास करें अथवा ना भी करे। ऐसा ही एक प्रसंग लिखने से पूर्व आपको अपने संवाई धाम की वर्तमान चहल पहल से अवगत कराना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

श्री सिद्ध योगावतार गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के 106 वें प्राकट्य दिवस 22 अक्टूबर 2015 के उपलक्ष्य में योगी श्री दासलाल जी महाराज ने दिनांक 15 अक्टूबर से 21 अक्टूबर तक श्री मद्भागवत योग यज्ञ का शुभ आयोजन किया। भागवत महापुराण प्रवक्ता परम भागवत आचार्य श्री पुरुषोत्तम शरण, वृन्दावन वाले ने अपने संगीतकारों सहित इन सात दिनों तक अपनी अमृतवर्षा से आश्रम को गुंजायमान किए रखा। इस भव्य समारोह में देश के कोने–कोने से पधारे गुरुभाई बहिनों, स्थानीय श्रद्धालुओं एवं पास पड़ोस गाँव के भक्तजनों ने जी भर कर अपना जीवन सार्थक किया। कथा का वास्तविक रस पान तो कथा स्थल पर ही प्राप्त किया जा सकता है मगर एक दिन तो यह मधुर रस दूर–दूर तक छिटक गया। अवसर ऐसे बना कि भागवत कथा के चलते मधुर स्वर गाते तोतों के रूप में श्री शुकदेव जी महाराज का पंडाल में उड़ान भर कर दर्शन देना तथा निकट ही कबूतर एवं मोरनियों की गर्दन हिलोरी स्वरों से वक्ता और श्रोताओं ने श्री शुकदेव जी महाराज की जय –बाँके बिहारी लाल की जय–महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज की जय–सिद्धगुफा संवाई धाम की जय– गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की जय....से वातावरण गुरुमय–भक्ति मय बना दिया। सरस्वती शिशु मन्दिर आगरा से आश्रम के दर्शनार्थ आए प्रधानाचार्य, आचार्य, और 40 छात्रों ने भी सिद्ध आश्रम की मनोहर गरिमा का लाभ उठाया। आईए अब हम अपने प्रसंग पर चलते हैं।

यह कृपा प्रसंग श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम से पूर्ण निष्ठा रखने वाले, आराध्य देव जी के परम लाड़ले आगरा निवासी 67 वर्षीय आदरणीय गुरु भाई श्री राधा रमण अग्रवाल ने कथा विश्राम पश्चात वर्णन किया कि हम अपने चाचा जी (अपने बचपन की तोतली भाषा से

ही अपने पिता श्री को चाचा सम्बोधित करते आए हैं।) के साथ इस आश्रम में गुरु जी के दर्शनार्थ आया करते थे। उसी उम्र से मैंने गुरुदेव की गोद में अपना मस्तक रख कर जो लाड़ प्यार लूटा है – जो आशीर्वाद के बादल दाता ने हम पर बरसाए हैं, भले ही हम उन हँसी मजाक के मीठे अंगूरों का स्वाद सहजता से चखते रहे, मगर आज तक उसी आंचल की शीतल छाया में पुलकित एवं आनन्दित जीवन जी रहे हैं। उसी क्रम के चलते सन् 1971–72 में भाग्य विधाता जी ने मुझे दीक्षा दे कर कृतार्थ किया। दीक्षा समय से ही मैं नियमित आरती पूजा – ध्यान – धारणा....आदि का लाभ ले रहा हूँ। समय की गति के साथ मेरे छोटे भाईयों की शादी सम्पन्न हो चली थी। मेरा अपना शादी का कोई विचार नहीं था। त्रिकाल दर्शी सिद्धों के सम्राट के समझाने आज्ञा देने से गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर सन् 1975 में मैं भी विवाह सूत्र के बन्धन में बँध गया।

पश्चात, अल्प समय तक ही हमारा जीवन व्यवस्थित रहा। शीघ्र ही मेरे चाचा जी को कलिष्ट रोगी संस्कार ने आ दबोचा। हमने वरिष्टतम चिकित्सकों द्वारा उपचार करवाया। मगर ज्यौं–ज्यौं दवा की त्यौं–त्यौं रोग बढ़ता ही गया। इसी उहा–पोह के मध्य जीवन दाता गुरुदेव भगवान की चरण शरण में निवेदित करते रहे और यह भी कि –

नैय्या तेरे लल्ला की – डोले बीच मझधार।
गुरुवर आ कर थाम लो – ये पड़ी पतवार ॥

परिणामत: हर बार संकट मोचन, हृदय सम्राट अपने आशीर्वाद में यही कहते रहे कि लल्ला घबराओ नहीं, प्रभू जी अवश्य – अवश्य कृपा करेंगे। मगर गहना कर्मणो गति– यका यक अनुभवी विशेषज्ञों ने मेरे चाचा को लाईलाज घोषित करके, जवाब दे दिया। हमारी आँखों में घोर अन्धकार छा गया। इस विषम संकट में प्रार्थना के स्वर स्वत: चलने लगे, और यह भी कि –

बिगड़ी बनाने वाले बिगड़ी बना दे
डा. ने जवाब दिया चाचा को बचा दे ....

इस व्याधी को चलते लगभग 8–10 दिन व्यतीत हो गए। हम सब प्रयत्न करके हार गया और पुकार उठा कि :–

हार गया गुरुदेव – मैं तो हार गया
करो चाचा का उपचार – मैं तो दहल गया
व्याकुलता है मन में भारी – चमत्कार करो हे अवतारी
कर दो शक्ति संचार........मैं तो दहल गया ....(1) हार गया
आशा मेरी पूरी कर दो – मेरी भक्ति चाचा में भर दो

ओ सिद्धों के सरदार मैं तो...... हार गया (2)

और एक दिन रात्री लगभग ग्यारह बजे मेरे चाचा ने आवाज निकाली, राधा रमण, मैंने कहा – हाँ चाचा, वे बोले – मैं जा रहा हूँ। इसी के साथ उनकी सांसे बन्द हो गई। यह क्या ? यह तो वही हुआ जिसका डर था। लेकिन स्वास का अन्त–वायु का अन्त तो नहीं है। हे भगवान अब क्या होगा ?

क्या होगा प्रभू क्या होगा – हे संकट मोचन क्या होगा ।
गुरु वचन तो पलटे नहीं – क्या गुरु तत्व प्रकट होगा।।
रोते को आप हंसाते हो – मुर्दे को आप जगाते हो
क्या मेरा चाचा जग जागा, हे संकट मोचन ....(1)
एक विधवा मुर्दा लाई थी – आपने जान लौटाई थी
क्या वह लक्ष्मण बूंटी बचा होगा – हे संकट ....(2)

उस समय मेरा मन उथल–पुथल भटक रहा था। यकायक मैं चाचा के चेहरे पर त्राटक करने लगा। आँखें तो खुली थी, झिपकी नहीं ले रही थी मुख से बोल नहीं रहे थे। उनकी चुप्पी शायद यही चिल्ला रही थी।

मैं अभी यहाँ हूँ – न जाने कहाँ जाऊँगा
मैं वो परिंदा हूँ जो समां में खो जाऊँगा ।।
दिल की डोर में ना बाँध मेरे बेटे
ना रहूंगा तो बहुत याद आऊँगा ।।

ये क्या अनहोनी हो रही है ? मैं क्या देख रहा हूँ ? कुछ नहीं पता अत: किंन कर्तव्य विमूढ़ सा अचम्भित मैं ध्यान में बैठ गया।

इस प्रसंग पर आगे बढ़ने से पहले मुझे जो अनुभव लगा, वह यहाँ स्पष्ट करना चाहता हूँ कि :–

न जाने गुरुवर किस बात पर – यों ही रीझ जाते हैं ।
बिन तोल मोल त्यों ही झोलीभर माला माल कर जाते हैं ।।

तात्पर्य है कि आदरणीय गुरुभाई राधारमण को दयालु गुरुदेव महाराज जी ने किसी बात से रीझ कर अथवा भाई जी के पूर्व कृत शुभाशुभ कर्म के संयोग से दीक्षा देने के साथ कोई दिव्य गुरु मंत्र अथवा दुर्लभ वरदायी मन्त्र अथवा महागुप्त मंत्र.....आदि दिया हुआ है, जो मेरी जिज्ञासा से श्रीमान जी के अधरों की मुस्कान तक ही सीमित रहा। उस उपहारी मन्त्र का प्रभाव, अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण द्वारा पांडव महारानी माता द्रोपती को दिए वरदान जैसा ही लगता है। इस बात का रंग और भी उभर कर आया जब इस अधम को कुछ और

भाग्यशाली वरदान पाए भाईयों के दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक भाई के विषय में ज्ञात हुआ कि इनको गुरु दिव्य वर से जब मन करे तब लीलाधारी गुरुदेव भगवान से स्थूल रूप में साक्षात्कार कर सकते हैं। एक और भाई का कहना था कि कभी–कभी ऐसी महक आती है जो न फूलवाड़ी की है, न फलों की है, न हवन यज्ञ की है, न बुझते दीपक की है, न इत्र गुलाब इलायची अथवा हींग.....आदि की है। यह महक आपके और हमारे आराध्य देव–अथवा त्रयदेव – अथवा देव लोक के देव–अथा पितृलोक से पितृ देव.......आदि के विधमान होने की अनुभूति है। कल सोमवार को गोवर्धन पूजा से ठीक पहले आपको भी यह महक आई होगी। एक गुरु बहिना ने बताया कि हमारे वो (स्व. पतिदेव) जब ध्यान में बैठते थे तो उनका शरीर भूमि से उपर उठ जाता था। अब भी भोर में 4–5 बजे हमारे मकान के दरवाजे कभी – कभी खड़कते हैं जो हम गुरु देव का पदार्पण ही समझते हैं ....इत्यादि। अब श्री राधा रमण अपने ध्यान के अनुभव बताते हैं कि :–

दाता के दर पै सुकुन मिलता है
उसकी दासता से नूर मिलता है।
जो भी झुक गया श्री चरणों में
उसे सब कुछ जरूर मिलता है।।

क्या बताऊँ ध्यान में मुझे एक विलक्षण घटना दिखाई दी। जगत नियन्ता सर्वाधार अखिल ब्रह्माण्ड नायक महा प्रभू श्री राम लाल जी महाराज चिमटा लिए खड़े हैं और निकट ही दो यमदूत खड़े हैं। यमदूत मेरे चाचा को अपने साथ चलने की कह रहे हैं और महाप्रभू जी दूतों को मना कर रहे हैं। इस वाद–विवाद के चलते मेरा ध्यान टूट गया। यह एक डेढ़ बजे का समय रहा होगा। अब खुली आँखों से भी मुझे प्राण दाता प्रभू जी एवं दोनों दूत ज्यों के त्यों दिखलाई देते रहे। जब दूत अपनी जिद से बाज नहीं आए तो प्रत्युत्तर में भव भय हारी महाप्रभू जी ने अपना चिमटा तान कर तेजस्वी बाणी से फटकार लगाई – जो फटकार लगाई, तब दोनों यमदूत मुझे दिखाई देने बन्द हो गए। पश्चात् महाप्रभू जी भी आशीर्वात्मक मुस्कान के साथ अन्तर्धान हो गए। श्री सद्गुरु वन्दना में सत्य ही कहा गया है कि :–

" श्री गुरुदेव के चरण कमलों का ध्यान होते के दोष के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्री के दोष अर्थात् विविध प्रकार के सांसारिक कष्ट मिट जाते हैं तथा राम चरित्र रूपी गुप्त रत्नों के दर्शन होने लगते हैं अर्थात् परमेश्वर का रहस्य भली भाँति समझ में आ जाता है। "

फिर भी ब्रह्माण्ड नायक जगत नियन्ता गुरुओं के महाप्रभू श्री रामलाल जी महाराज के इस अनुपम चमत्कार को स्वप्न सा स्मरण करता – करता मैं ध्यान में खो गया। यह करीब दो–ढाई बजे का समय था। पश्चात् यकायक मुझे मेरे चाचा जी की मखमली सी

पुकार कान में प्रवेश की राधा रमण ! मैं चाचा–चाचा कहते–कहते चन्दन के लेप की तरह उनसे लिपट गया। दोनों की पांचों इन्द्रियाँ बदरीया बरसाने लगी। फिर दोनों ने सत्य की जोत और धर्म के दीपक पर आँखन देखी मृत्यु की घाटी तक के मार्मिक अनुभव साझा किए।

गुरु देव जय जय सद् गुरु जय जय।

अखण्ड ज्योति प्रभु राम लाल जय जय ।।

तदउपरान्त गुरु कृपाओं की छाया में मेरे पूज्य चाचा जी पूरे तेतीस वर्ष पश्चात अपनी 97 वर्ष की आयु के साथ सन् 2008 में गुरु धाम को सिधारे।

जय गुरू देव

● ● ●

ज्ञानोदयात्पुरारब्धं कर्म ज्ञानान्न नश्यति।

अदत्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टबाणवत्।।

व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो बाणः पश्चात्तु गोमतौ।

न तिष्ठति छिनत्त्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम्।।

लक्ष्य की ओर छोड़ दिये गये बाण के समान ज्ञान के उदय से पूर्व ही आरम्भ हुआ कर्म अपना फल दिये बिना ज्ञान से नष्ट नहीं होता, जैसे व्याघ्र समझकर गौ की ओर छोड़ा हुआ बाण पीछे उसको गौ जान लेने पर भी बीच में नहीं रोका जा सकता वह तो तुरंत अपने लक्ष्य को बेध ही देता है।

काल-विवेचन

लेखक – पं. श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम. ए., डी. लिट्.

काल-संकर्षणा

साधारण दृष्टि से आलोचना करते समय यह जान पड़ता है कि विश्व में दो विपरीत शक्तियाँ कार्य कर रही हैं। उनमें एक **'भगवत्–शक्ति'** या **'अनुग्रह शक्ति '** के नाम से परिचित है और दूसरी शक्ति का नाम **'कालशक्ति'** या **'तिरोधान– शक्ति'** है। पूर्ण परमतत्त्व में ये दोनों शक्तियाँ परस्पर भेदरहित अभिन्न रूप में स्वातन्त्र्य स्वरूप नाम ग्रहण करके कार्य करती हैं। किंतु परमेश्वर जब आत्मसङ्कोच करके जीवरूप में आत्मप्रकाश करते हैं, तब शक्ति की ये दोनों धाराएँ पृथक् हो जाती हैं। एक जीवभाव या पशुभावका पुष्टिसाधन करती है, और दूसरी पशुभाव निवृत्त करके परम–स्वरूप में प्रत्यावर्तन करने में सहायता करती है। अनुग्रह–शक्ति क्रमशः आत्मा को परमस्वरूप में पुनः प्रतिष्ठित करती है। कालशक्ति निरन्तर बहिर्मुख प्रेरणा के द्वारा जीव को संसार में जकड़े रहती है। जो शक्ति क्रमशः काल को स्वाधिकार से अपसारित करती है, उसका नाम है – **'कालसंकर्षिणी शक्ति '**। क्रम काल का धर्म है। काल–राज्य में क्रम का अवलम्बन करके ही चलना पड़ता है। काल–संकर्षण का चरम लक्ष्य है – क्रम को अतिक्रम करके अक्रम–स्वरूप में आत्मप्रकाश करना। काल संकर्षण के फल से क्रमशः काल से क्षण की प्राप्ति होती है। विश्व–सृष्टि काल के अधीन है। इसी कारण इसमें निरन्तर परिणाम हो रहा है। इस परिणाम में क्रमका मात्रागत तारतम्य रहता है। भगवत्कृपा के प्रभाव से यह मात्रागत तारतम्य क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म में परिणत होता है। चैतन्य की अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है, काल की मात्रा उतनी ही क्षीण होती जाती है। इसके फलस्वरूप काल के स्पर्शहीन चैतन्यस्वरूप में कालगत मात्रा का प्रभाव कुछ भी नहीं रहता। वहाँ एक ही क्षण में अनादि–अनन्त महाकाल प्रकाशित हो उठता है। काल में क्रम है, किंतु **'क्षण'** में क्रम नहीं है। जब आवरण क्रमशून्य भाव में चला जाता है, तब एकमात्र क्षण ही वहाँ रह जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि एक ही क्षण में समग्र विश्व का परिणाम संघटित हो जाता है। काल से क्षण में प्रविष्ट होने के उपायका अवलम्बन कर पाने पर इच्छा मात्र से अविलम्ब क्षण में प्रवेश हो जाता है। काल राज्य के विभिन्न स्तर हैं। प्रत्येक स्तर में काल की गति मे मात्रा का तारतम्य है। यह तारतम्य वेग की न्यूनता अथवा अधिकतापर निर्भर करता है। जहाँ अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से काल को माया क्षीण हो जाती है, वहाँ कालसंधि प्रकाशित होती है, वहाँ क्षण का प्रकाश सहज ही अनुभव में आने लगता है। जिस स्थान में या जिस अवस्था में यह क्रम लुप्त हो जाता है, उस स्थान में क्षण का प्रकाश अनिवार्य हो जाता है। क्षण जब स्थायी रूप में प्रतिष्ठित होता है, तब वहाँ काल नहीं रहता। इस अवस्था को **' काल–संकर्षिणी '** की अवस्था

कहते हैं। संवेग के तारतम्य के अनुसार इस अवस्था के नाना प्रकार के भेद हो सकते हैं। 'क्रमहीन काल ' का ही नाम 'क्षण ' है। क्षण नित्य और स्वयंप्रकाश है। व्यवहार–भूमि में काल का क्रम स्वीकार करना पड़ता है, परंतु क्षणिक ज्ञान व्यवहार–भूमिका विषय नहीं है।' अनन्त 'काल' शब्द से हमारा जो अभिप्राय होता है, वह एक दृष्टि से क्षण के सिवा और कुछ नहीं है। कालसंकर्षिणी के प्रभाव से काल की निवृत्ति हो जाती है। काल की निवृत्ति के साथ–साथ अखण्ड स्वयं प्रकाशपूर्ण आत्मतत्व, निष्फल स्वातन्त्र्य प्रकाश रूप में प्रस्फुटित होता है। काल की मात्रा के अनुसार उसके वेग की न्यूनता या अधिकता को निरूपण किया जाता है। काल के साथ देश का ज्ञान नित्य संश्लिष्ट है, अतएव काल–निवृत्ति के साथ देश–निवृत्ति भी हो जाती है। तब आत्मा देश और काल से मुक्त हो जाता है। इस अवस्था में अपने संकल्प के अनुसार उसके सामने कोई भी देश और कोई भी काल व्यक्त हो सकता है। इस प्रकार योगी का नित्यत्व और व्यापकत्व उसके निकट प्रकट हो जाता है।

काल का आवर्तन

काल की गति आवर्तनशील है। इस आवर्तन में सारा विश्व अपनी–अपनी मात्रा के अनुसार आवर्तित होता रहता है। काल की सरल गति भी है। उसमें काल महाकाल रूप में आत्मप्रकाश करता है। माया राज्य को पार करने पर काल की वक्रगति से उद्धार पाना सम्भव होता है। तब सरल गति का प्रकाश रहता है। इससे तीनों काल एक अखण्ड वर्तमान रूप में प्रकाशित होते हैं। काल की सरल गति के बाद केन्द्रस्थान में काल स्थिरत्व प्राप्त करता है। काल महाकाल में परिणत होकर कालातीत नित्य विराजमान परम पुरुष – रूप में आत्मप्रकाश करता है। काल की वक्रता के चले जाने पर अनन्त आकाश की अनन्त सत्ता निवारण होकर वहाँ प्रकाशमान होती है। तब सर्वदेश और सर्वकाल एक महाबिन्दु के बीच प्रकाशमान हो जाता है अर्थात् तब योगी की इच्छा के साथ–साथ तत्तत् देश और तत्तत् काल प्रकाशित होते हैं। तब व्यवधान अथवा दूरत्व नहीं रहता। आचार्य भर्तृहरि कहते हैं –

आविर्भूतप्रकाशानामनुपद्रुतचेतसाम् ।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते ।।

अर्थात् महाप्रकाश का आविर्भाव होने पर किसी प्रकार का आवरण क्रिया नहीं कर सकता। आवरण तमोगुण का कार्य है। प्रकाश के आने पर जैसे अन्धकार हट जाता है, ठीक उसी प्रकार महाप्रकाश के उदय होने पर सब प्रकार के आवरण तिरोहित हो जाते हैं। चित्त की चंचलता रजोगुण से उत्पन्न होती है तथा महा प्रकाश का उदय होने पर तमोगुण के समान रजोगुण भी अपसृत हो जाता है। तब चित्त में चंचल भाव बिल्कुल ही नहीं रहता। चंचलता शून्य चित्त के सामने निरावरण प्रकाश का आविर्भाव होने पर विश्व में कुछ भी अप्रत्यक्ष नहीं रह

सकता। तब सब कुछ नित्य वर्तमान रूप में उपलब्ध हो सकता है। किंतु यह उपलब्धि **'अहं'** रूप में न होकर **'अहं'** के आगे स्थित **'इदं'** रूप में होती है। काल का चरम अवसान हो जाने पर और महाकाल के निवृत्त हो जाने पर जो अवस्था अभिव्यक्त होती है, वह महासृष्टि के भी अतीत है। वही 'पूर्णाहन्ता-स्वरूप' है।

अमरत्व की प्राप्ति और मृत्यु-विजय

साधारण स्थूल दृष्टि से अमरत्व की प्राप्ति और मृत्यु-विजय एक ही अवस्था के दो नाम जान पड़ते हैं, परंतु वस्तुतः ऐसी बात नहीं है; क्योंकि अमरत्व की प्राप्ति की अपेक्षा मृत्यु-विजय बहुत ही ऊँची अवस्था है। समुद्र – मन्थन के उपाख्यान से जाना जाता है कि समुद्र-मन्थन से उत्पन्न अमृत का पान करके देवताओं ने अमरत्व प्राप्त किया था ; परंतु समुद्रमन्थन से ही उत्पन्न तीव्र हलाहल विषको ग्रहण करने में उनमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ। जिन्होंने उस हलाहल को पान करके पचा लिया था, उनकी स्थिति को केवल देवताओं के अनुरूप वर्णन करने से काम नहीं चलता। इसीलिये उनको **'मृत्युञ्जय'**, **'महादेव'** कहा जाता है। काल रूपी मृत्युपर विजय प्राप्त किये बिना कोई 'मृत्युञ्जय' नहीं हो सकता। यह काल ही **'कालकूटविष'** है। देवता लोग इसको पचा नहीं सकते। समस्त विश्व-सत्ता को मन्थन करके उसमें से सुन्दर और शोभन अंश जो ग्रहण करते हैं, वे दिव्य पुरुष हैं, किंतु इस मन्थन से उत्पन्न विश्व की अन्तर्वर्त्ती प्रतिकूल सत्ता, जिसको देवगण सहन नहीं कर सकते, उसको भी जो अम्लानवदन– प्रसन्न मुख से पान करके मृत्यु के ऊपर जय-ध्वजा फहराते हैं, वे **'मृत्युञ्ज्य'** महादेव हैं। इसी का नाम है – स्वरूप का रूपान्तर-सम्पादन। काल पर विजय प्राप्त करना हो तो केवल निम्नस्तर त्यागकर उच्चस्तर में गमन करने से काम नहीं चलेगा। दोनों स्तरों का समीकरण करके दोनों को एक करना आवश्यक है, अर्थात् दृष्टान्तस्वरूप कहा जा सकता है कि अन्नमय से प्राणमय स्तर में जाकर तथा पूर्णतः प्राणमय स्तर में तादात्म्य प्राप्त करने से काम नहीं चलेगा। प्राणमय से प्राणशक्ति लेकर अन्नमय में अवरोहण करना होगा तथा अन्नमय को प्राणशक्ति के प्रभाव से प्राणमयरूप में परिणत करना होगा। इस प्रकार बारंबार करते-करते एक ओर प्राणमय जैसे अन्नमय सत्ता में सत्तावान् होता है, दूसरी ओर वैसे ही अन्नमय भी प्राणमय सत्ता में सत्तावान् हो जाता है। पश्चात् ये दोनों एक हो जाते हैं।

इस विषय को समझाने की सुविधा के लिये 'क' रक्खा गया। इसके बाद 'क' ऊर्ध्वगति के द्वारा मनोमय में प्रवेश करता है और उसके साथ एक हो जाता है। तत्पश्चात् 'क' में अवतरण करके 'क' को भी मनोमय कर डालता है। धीरे-धीरे वह एक हो जाता है। उसका नाम 'ख' है। इसके बाद 'ख' ऊर्ध्वगति के द्वारा विज्ञानमय कोष में प्रवेश करता है और उसके साथ ऐक्य प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह उतरकर 'ख' के साथ एक हो जाता है। इस अवस्था का नाम 'ग' है। इसके बाद 'ग' उत्थित होकर आनन्दमय कोष को स्पर्श करता है और उसको अपना

लेता है। उसके बाद यह एकीभूत सत्ता विज्ञानमय में अवतरण करती है और विज्ञान को अपने साथ अभिन्नरूप में स्थापित करती है। इसका नाम '**घ**' है। इसके परे भी अवस्था है। जिसको '**घ**' कहा गया, वह एक ही साथ अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनन्दमय सत्ता है। किंतु यह अचित्–स्वरूप है। इसके बाद '**घ**' चित्स्वरूप आत्मा में प्रवेश करके उसके साथ एक हो जाता है। उसके बाद चित्स्वरूप आत्मा अवतरण करके अचित् के साथ एक हो जाता है। तब चित् और अचित् का अथवा आत्मा और शरीर का भेद नहीं रहता। यहाँ तक सम्पन्न होने पर चित् और अचित् का भेद कट जाता है तथा स्थूल और सूक्ष्म का भी भेद नहीं रह जाता। विभिन्न खण्ड सत्तामें से सब प्रकार का पार्थक्य तिरोहित होकर एक अखण्ड सत्ता विद्यमान हो जाती है। यही यथार्थ सिद्धावस्था है। इसी के दूसरे नाम '**कालजय**' या '**मृत्युञ्जयत्व**' की प्राप्ति है। यह देवावस्था से बहुत ऊँची अवस्था है; क्योंकि देवावस्था में अमरत्व की प्राप्ति तो होती है, किंतु मृत्यु पर जय प्राप्त नहीं है। अमर लोग मृत्यु से डरकर दूर ही रहते हैं। इसी से कहा जाता है कि देवगण भी मृत्यु के अधीन हैं। सोमपान या अमृतपान के द्वारा देवगण जो अमरत्व प्राप्त करते हैं, वह केवल दीर्घ जीवन की प्राप्ति मात्र है। महाप्रलय या अतिमहाप्रलय में इस दीर्घजीवन का भी अवसान हो जाता है; किंतु मृत्युञ्जय अवस्था कालातीत है। उसमें मृत्यु ही नहीं रहती। सिद्धगण का सिद्धत्व इस मृत्युञ्जयत्व की सामर्थ्य के ऊपर निर्भर करता है। केवल मृत्युञ्जयत्व चरम सिद्धि नहीं है। गीता (14/2) में जो कहा है–

" सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च । "

यह इसी ' कालातीत मृत्युञ्जय ' अवस्था का वर्णन है।

काल और महाकाल का रहस्य

काल और महाकाल के रहस्य के सम्बन्ध में संक्षेप से कुछ कहा जाता है। काल और महाकाल स्वरूपतः एक ही वस्तु हैं। तथापि दोनों में पार्थक्य है। जगत् के परिणाम के मूल में काल की शक्ति क्रिया करती है। प्रकृति के परिणामशीला होने पर भी सृष्टि की धारा काल के द्वारा ही नियन्त्रित होती है। पातञ्जलदर्शन के दृष्टि कोण से ज्ञात होता है कि प्रकृति परिणामिनी है। यह परिणाम दो प्रकार का है। एक परिणाम, " **सदृश परिणाम** " के नाम से ख्यात है। दूसरे का नाम " **विसदृश परिणाम** " है। गुणत्रय की साम्यावस्था ही प्रकृति का स्वरूप है। वैषम्यावस्था में सृष्टि का उदय होता है। लय के समय सत्त्व सत्त्वरूप में, रजः रजोरूप में और तमः तमो रूप में ' **सदृश परिणाम** ' को प्राप्त होता है। इस परिणाम के साथ भी काल का सम्बन्ध है। इस परिणाम के समय सारे कर्म संस्कार परिपक्व होते हैं और सृष्टि की उन्मुखावस्था का उदय होता है। सृष्टि के नियामक के रूप में काल के न रहने पर प्रलय के अन्त में सृष्टि आरम्भ होने का कोई निर्देश न रहता। प्रकृति का परिणाम स्वभाव सिद्ध होने पर भी गुण का परिपाक काल सापेक्ष है। गुण के परिपाक के बिना ' **विसदृश परिणाम**' अथवा '**तत्त्वान्तर**

परिणाम' नहीं होते । तत्त्वान्तर परिणाम की सम्भावना न रहने पर सृष्टि का उदय असम्भव हो जाता है। सृष्टि के मूल में कर्मसंस्कार रहता है, यह सत्य है; किंतु अपक्व संस्कार से सृष्टि नहीं होती। इसके लिये काल की अपेक्षा है। इसी कारण महाभारत में कहा है कि–

" कालः पचति भूतानि। "

'**तत्त्वान्तर परिणाम**' के तीन प्रकार हैं – धर्म, लक्षण और अवस्था। प्रकृति धर्मी है। वह जो धर्मरूप में परिणत होती है, वही उसका प्रथम परिणाम है। यह धर्म उसके बाद काल–परिणाम के अधीन हो जाता है। '**काल–परिणाम**' को '**लक्षण–परिणाम**' कहते हैं। अनागत, वर्तमान और अतीत–ये तीन लक्षण हैं। इनका त्रिकाल (तीन काल) के नाम से वर्णन किया जाता है। धर्म सबसे पहले अनागत लक्षण में प्रवेश करता है। उसके बाद अनागत धर्म अर्थात् भविष्य धर्म वर्तमान रूप में परिणत हो जाता है। अनागत को करण व्यापार के द्वारा वर्तमान में परिणत करना पड़ता है। अकृत्रिम रूप में यह स्वभावतः होता है। कृत्रिम रूप में मनुष्य इसे कर सकता है या किया करता है। अनागत व्यवस्था में जो सत्ता रहती है, वर्तमान अवस्था में भी सत्ता वही रहती है। परन्तु अनागत अवस्था में वह अव्यक्त होती है। करण आदि अभिव्यञ्जक के द्वारा अभिव्यञ्जित होकर वह वर्तमान रूप में स्थित होती है। यहाँ याद रखना चाहिये कि करण व्यापार अनागत सत्ता को अभिव्यक्त करके वर्तमान में व्यक्त करता है, यह सत्य है। किन्तु केवल धर्म सत्ता को अव्यक्त अवस्था से व्यक्त नहीं कर सकता। धर्म–परिणाम काल से संश्लिष्ट हुए बिना अनागत लक्षण–परिणाम के रूप में परिणत नहीं हो सकता। लक्षण–परिणाम वस्तु की व्यापक सत्ता है। वह परिणामशील होकर भी जब तक अव्यक्त रहती है, तब तक उसमें क्षणिक परिणाम का उदय नहीं होता। वर्तमान लक्षण में प्रतिक्षण परिणाम सम्भव है। इसी का नाम '**अवस्था–परिणाम**' है। अतीत लक्षण में क्षणिक परिणाम का संधान नहीं मिलता। अनागत और अतीत, दोनों क्षेत्रों में ही क्षणिक परिणाम नहीं होता। कालक्रम को अवलम्बन करके परिणाम कार्य सम्पादन करता है। इस क्रम के द्वारा ही पूर्वापर अनुभव होता है। वस्तुतः यह क्रम क्षण का ही क्रम है। योगी के सिवा दूसरा कोई '**क्षण का क्रम** ' नहीं समझ सकता । वस्तुतः एक ही क्षण में समस्त जगत् परिणाम अनुभव करता है। योगी की दृष्टि में काल बौद्ध पदार्थ है। बुद्धि के बाहर काल नहीं है, क्रम है। क्षण के क्रम के अनुसार काल का परिमाण होता है। क्षण और उसके ऊपर योगी '**विवेकज ज्ञान**' प्राप्त कर सकता है। '**विवेकज ज्ञान**' विवेकज्ञान नहीं है, यह उससे पृथक् है। यह '**अनौपदेशिक प्रातिभ ज्ञान** ' है। इस प्रातिभ ज्ञान से त्रिकाल का पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है। उसमें कोई क्रम नहीं रहता। वह शब्दजनित ज्ञान नहीं है। अतएव उसमें क्रम का प्रश्न ही नहीं उठता।

तान्त्रिक दृष्टि के अनुसार काल और महाकाल में पार्थक्य है। पूर्णत्व में जाने के मार्ग में काल राज्य को भेद कर के महाकाल में प्रवेश होता है। उसके बाद महाकाल का भी भेद करके, पूर्ण अहंतामय अखण्ड राज्य में प्रवेश होता है। जैसे महाप्रलय का विवरण सुनने में आता है, वैसे

ही महासृष्टि का संधान भी शास्त्र में उपलब्ध है। महासृष्टि में न तो अतीत, अनागत, वर्तमान का कोई भेद है तथा न उसमें कोई भी परिणाम है। अनन्त सृष्टि की सम्पूर्ण सत्ता ही वहाँ नित्य वर्तमान रूप में प्रकाशित है। परन्तु यह अनन्त सृष्टि इदं रूप में प्रकाशित है, अहं रूप में नहीं। जो कोई जो कुछ खोजेगा, वहाँ उसको वही मिलेगा। वहाँ किसी वस्तु का अभाव नहीं है। वहाँ अतीत भी वर्तमान है, अनागत भी वर्तमान है और वर्तमान भी वर्तमान है। हमारे परिचित वर्तमान में क्षणिक परिणाम है, परंतु वहाँ वह भी नहीं है।

हमारा परिचित विश्व कालराज्य में अवस्थित है। जिसको ब्रह्माण्ड कहा जाता है, वह काल के अधीन है; क्योंकि इसकी भी सृष्टि, स्थिति और संहार है। ब्रह्माण्ड की संख्या असंख्य है, पर सर्वत्र यही नियम है। ब्रह्माण्ड की समष्टि को लेकर प्रकृत्यण्ड की सृष्टि होती है। प्रकृत्यण्ड भी असंख्य हैं। वहाँ भी काल का परिणाम है और उनका भी सृष्टि–संहार है। समस्त प्रकृत्यण्ड की समष्टि को मायाण्ड कहते हैं। समस्त मायाण्ड में एक ही स्वभाव है। माया के ऊर्ध्व में शाक्ताण्ड है। वहाँ काल की गति अन्य प्रकार की है। वहाँ निम्नस्तर की भाँति सृष्टि–संहार नहीं होता, तथापि सृष्टि–संहार है।

काल की आलोचना करते समय सृष्टि और संहार के विषय में प्रसङ्गत: आलोचना करना आवश्यक है। सबसे पहले संहार के विषय में कुछ कहना सङ्गत जान पड़ता है; क्योंकि संहार के बाद ही सृष्टि का उन्मेष बुद्धि में आरूढ़ होता है। प्राचीन आचार्यों ने प्रलय को चार भागों में विभक्त किया है, अवश्य ही वह है आपेक्षिक रूप में ही। उनमें एक '**नित्य प्रलय**' है। दूसरा, '**नैमित्तिक प्रलय**' तीसरा '**प्राकृतिक प्रलय**'अथवा '**महाप्रलय**' है और चौथा 'आत्यन्तिक प्रलय या 'मोक्ष' है। नित्य प्रलय सर्वदा और सर्वत्र सूक्ष्म रूप में चलता रहता है। निद्रा की अवस्था भी एक प्रकार का प्रलय है। सारे जगत् में निरन्तर इस प्रकार का प्रलय चलता रहता है। नित्य प्रलय जगत् की निरन्तर विनश्वरता को प्रमाणित करता है। इस ब्रह्माण्ड के अधिपति का नाम हिरण्यगर्भ या ब्रह्मा है। श्रुति के अनुसार उनकी आयु सौ वर्ष है। यह उनके निजी मान के अनुसार अथवा दिव्य मान के अनुसार है, ऐसा समझना चाहिये। जिसको हम ब्रह्माण्ड समझते हैं, वह इस हिरण्यगर्भ का ही शरीर है। ब्रह्मा की आयु का अवसान हो जाने पर ब्रह्मा के देह की समाप्ति हो जाती है। इसी को '**महाप्रलय**' कहते हैं। इसी समय ब्रह्मा की जीवन्मुक्त अवस्था का अवसान हो जाता है और वे परब्रह्म के साथ तादात्म्य को प्राप्त हो जाते हैं। अब तक ब्रह्म लोक में जो लोग रहते थे, उन सभी को लेकर वे ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाते हैं। परंतु ब्रह्मलोक में सब लोग एक ही अवस्था में हों, ऐसी बात नहीं है। सालोक्य से सायुज्यपर्यन्त सभी अवस्थाएँ वहाँ हैं। महाप्रलय के बाद नवीन सृष्टि दूसरे ब्रह्माको लेकर होती है। इसी प्रकार अनादिकाल से होता आ रहा है और अनन्त काल तक होता रहेगा। ब्रह्माण्ड के ध्वंसरूपी इस प्रलय को '**प्राकृतिक प्रलय**' कहते हैं। प्रचलित भाषा में इसका नाम '**महाप्रलय**' है। इस अवस्था में प्राचीन जगत् की सृष्टि का अवसान तथा नवीन जगत् का अभ्युत्थान होता है।

ब्रह्मा के दिन के अन्त में अर्थात् ब्रह्मा के निद्रा काल में जो प्रलय होता है, उसका नाम **'नैमित्तिक प्रलय'** है। नैमित्तिक प्रलय दो प्रकार का होता है – आंशिक और पूर्ण । आंशिक प्रलय कब होता है ? इसके उत्तर में आचार्यगण कहते हैं कि एक–एक मन्वन्तर के बाद यह हुआ करता है। ब्रह्मा के एक दिन को **'कल्प'** कहते हैं। कल्प के अन्त में जो प्रलय होता है, उसका नाम **'कल्प प्रलय'** है। एक कल्प में, अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन में चतुर्दश मनुओं का आविर्भाव और तिरोभाव होता है। 71000 महायुग में एक–एक मनुका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। एक मनु के अवसान में एक प्रलयावस्था उदय होती है। तत्पश्चात् द्वितीय मनु का उदय होता है; इत्यादि। इस प्रकार चतुर्दश मनुका आयुष्काल पूर्ण होने पर ब्रह्मा का एक दिन पूर्ण होता है। **'मन्वन्तर प्रलय'** से कल्प प्रलय व्यापक है और **'कल्प प्रलय'** से **'महाप्रलय'** व्यापकतर होता है। एक–एक मन्वन्तर में मनु के साथ इन्द्र, ऋषि, देवर्षि और पितृगण का परिवर्तन होता है। मन्वन्तर प्रलय में पृथिवी जलमग्न हो जाती है। तब भूर्लोक से भुवर्लोक और स्वर्लोक का सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। महर्लोक की अवस्था अविकृत रहती है। पूर्ण नैमित्तिक प्रलय के समय कल्पका अन्त हो जाता है, अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन का अवसान हो जाता है, अतएव समस्त सृष्टि में निद्रा का भाव प्रबल हो जाता है। ब्रह्मा के निद्रागत होने के कारण कल्प प्रलय में सारा जगत् सुप्त हो जाता है। उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक नहीं रहते, दग्ध हो जाते हैं। महर्लोक के ऋषिगण ताप के कारण जन–लोकमें चले जाते हैं। इसके बाद नीचे के तीनों लोक जलमग्न हो जाते हैं। तब ब्रह्माण्ड की प्राणशक्ति को आकर्षण करके भगवान् विष्णु शेषशय्या पर शयन करते हैं। यह उनकी 'योगनिद्रा' है।

'नित्य प्रलय' और **'आत्यन्तिक प्रलय'** पिण्ड के साथ संश्लिष्ट हैं, किंतु **'नैमित्तिक प्रलय'** का सम्बन्ध ब्रह्माण्ड के साथ है।

पाप का फल अकेला ही भोगता है

अन्त काल में मनुष्य सबको छोड़कर अकेला ही परलोक की यात्रा करता है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी पत्नी, मेरे पुत्र और मेरी वस्तु–इस प्रकार की ममता प्राणियों को व्यर्थ की पीड़ा देती रहती है। पुरुष जब तक धन कमाता है, तभी तक भाई – बन्धु उससे सम्बन्ध रखते हैं, परन्तु इह लोक और परलोक में केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है। धर्म और अधर्म से कमाये हुए धन के द्वारा जिसने जिन लोगों का पालन–पोषण किया है, वे ही मरने पर उसे आग के मुख में झोंककर स्वयं घी मिलाया हुआ अन्न खाते हैं। पापी मनुष्यों की कामना रोज बढ़ती है और पुण्यात्मा पुरुषों की कामना प्रतिदिन क्षीण होती है। मनुष्य के कमाये हुए सम्पूर्ण धन को सदा सब भाई – बन्धु भोगते हैं, किंतु वह मूर्ख अपने पापों का फल स्वयं अकेला ही भोगता है। (**महर्षि उत्तङ्क**)

ज्ञान की सात भूमिकाओं में छुपा योग

डॉ. जे. पी. शर्मा, पौंटा साहिब, जि. सिरमौर, हि.प्र.

ब्रह्माण्ड जगत का सृजन ज्ञान के कारण ही हुआ है। **''एकोऽहं बहुस्याप''** अर्थात् मैं अकेला हूँ, एक से अनेक बन जाऊँ। ब्रह्म को अकेले होने का आभास **ज्ञान** के कारण ही हुआ। सृष्टि के हर जीव को हर पल जीवनयापन के लिए ज्ञान का होना अत्यावश्यक होता है। ज्ञान के द्वारा छोटे से लेकर बड़े–बड़े कार्य आसानी से हो जाते हैं। ज्ञान के अभाव में जीव दर–दर भटकता रहता है। मानव ज्ञान के अभाव में देवों के दास बने रहते हैं। अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्राणी देवी–देवताओं की पूजा, अर्चना, भक्ति आदि करता आया है। अतः प्राचीनकाल से ही मानव अपने पुरुषार्थ और आत्मबल बढ़ाने का प्रयास करता आ रहा है। अपने आत्मबल से मानव देवताओं से शक्तियां प्राप्त करते हैं। हर मानव की उत्कंठा होती है कि वह भी अपने पुरुषार्थ के बल पर देवताओं जैसी शक्ति से ओत–प्रोत रहे। उसी के लिए निरंतर मानव प्रयत्नशील रहा है। अतः हर प्राणी का कर्त्तव्य है कि अपने पुरुषार्थ का विकास करे तथा देवत्व ही नहीं ईशत्व बनने का निरन्तर प्रयास करे। वही वीर साहसी साधक मनुष्य कहलाने के योग्य है। अन्यथा मानव देवों के पशु ही बने रहेंगे। भगवती श्रुति कहती हैं – **''ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः''** अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है। वह ज्ञान क्या है? यह जानने की चेष्टा करनी चाहिए। संसार में दीखने वाली प्रत्येक लौकिक विद्या दुःखों की अधिक निवृत्ति और सुख की परावधि प्राप्त करवाने में सर्वथा असमर्थ है। यह सभी भलीभांति जानते हैं। फिर यह कौन सी विद्या है जिसके द्वारा मनुष्य कर्त्तव्य, ज्ञातव्य और प्राप्तव्य की सर्वोत्तम सिद्धि को साधकर कृतकृत्य हो सके? केवल सर्वोत्तम विद्या ब्रह्मविद्या ही कही गई है। उसी की सहायता से मनुष्य, मनुष्यत्व से देवत्व, देवत्व से ईशत्व प्राप्त कर सकता है। जगत का प्रत्येक अणु–सजीव या निर्जीव प्रतिक्षण उत्तरोत्तर शुद्ध होकर विकास कर रहा है। आध्यात्मिक जगत में विकास करने के इच्छुक साधक को अपने स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण इस देह चतुष्टय तथा मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार – इस अन्तःकरण चतुष्टय को शुद्ध करना परमावश्यक है। शुद्धि होने पर सत्य वस्तु का यथार्थ ज्ञान हो सकता है। सत्य का ज्ञान होने से ही कर्तव्य परावधि प्राप्त हो सकती है। सत्य ज्ञान के बिना प्राणी को बार–बार जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति पाना संभव नहीं है। अतः अथक प्रयास करके सत्यज्ञान का मार्ग प्राप्त करना ही चाहिए।

मोक्ष प्राप्ति के दो ही मार्ग बतलाये गये हैं – योग विद्या तथा वेदान्तशास्त्र। श्रीयोग वशिष्ट महारामायण में वर्णित है –

द्वौ क्रमौ चित्तनाशाय योगो ज्ञानं च राघव।
योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगविक्षणम्।।

असाध्यः कस्यचिद्योगो कस्यचिद् ज्ञाननिश्चयः।
प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमेश्वरः।।

करोड़ों वर्षो में तय होने वाला मार्ग, योग साधना से सहज हो जाता है। जिसको मुक्ति पाने की इच्छा हो उसे योगमार्ग अपनाना चाहिए। योग मार्ग ही निकट का और छोटा मार्ग है। सामान्य मार्गों से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त करने के लिये अनेकों जन्म धारण करने पड़ते हैं तथा करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। परन्तु योग साधन करके मनुष्य एक ही जन्म में मोक्ष पा सकता है। योग विद्या ही ब्रह्मविद्या कही जाती है। योग साधन सर्वश्रेष्ठ साधना कही जाती है। योग ही सर्वोत्तम विद्या है। योग विद्या प्राप्त करने के लिए साधक को सिद्धगुरु की देखरेख में साधना करनी चाहिए। सद्गुरु सच्चा मार्ग दिखाने में समर्थ होते हैं। सद्गुरुओं की सहायता के बिना मिथ्या भ्रान्तियों में फँसकर अवनति को प्राप्त होते रहते हैं। इसलिए दीर्घ–दर्शी तत्वज्ञान सम्पन्न शास्त्रकारों ने भी आज्ञा दी है –

तद्विज्ञानर्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्।

इसका समर्थन आचार्य चूरामणि श्री शंकर भगवान भी करते हैं –

गुरुमेवाचार्यं शमदमादिसम्पन्नमिगच्छेत्।
शास्त्रज्ञोऽपि स्वातन्त्र्येण ब्रह्मज्ञानान्वेषणं न कुर्यात।।

अर्थात् शम–दमादि सम्पन्न गुरु के समीप जाना चाहिए। शास्त्र का ज्ञान होने पर भी ब्रह्मज्ञान की खोज स्वयं नहीं करनी चाहिए। लौकिक विद्या भी गुरु से ही प्राप्त की जाती है तब ब्रह्मविद्या भी गुरु से प्राप्त करनी फलदायी रहती है। अनाधिकारी ब्रह्मविद्या प्राप्ति के पात्र नहीं होते। इसीलिए ज्ञान की सात भूमिकाओं का वर्णन किया जा रहा है, जो इस प्रकार है –

भूमयः सप्त तद्वत्स्युर्ज्ञानस्योक्ता महर्षिभिः।
शुभेच्छा ननु तत्राधा ज्ञानभूमिः प्रकीर्तिता।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा।।
सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्यादसंसक्तिश्च पंचमी।
पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी चाथ तुर्यगा।।

हमारे परम आदरणीय पूज्य महर्षियों ने सात ज्ञान की भूमिकायें बतलायीं हैं –

1. शुभेच्छा – नित्यानित्यवस्तु विवेकादिपुरःसरा
फलपर्ययसायिनी मोक्षेच्छा शुभेच्छा।

अर्थात् नित्यानित्य वस्तु विवेक – वैराग्य के द्वारा सिद्ध हुई फल में पर्यवसित होने वाली मोक्ष की इच्छा अर्थात् विविदिषा, ममुक्षुता, मोक्ष के लिए आतुर इच्छा ही शुभेच्छा है। जब मनुष्य सोचने लगे कि मैं मूर्खों की तरह क्यों रहूँ। वैराग्य का सहारा प्राप्त करके आगे बढ़े तथा

आशा करे कि मैं भी महापुरुषों की सामर्थ वाला क्यों न बनूँ साधन जुटाकर मोक्ष कामना प्रगट करें। तब उसकी इस प्रकार की इच्छा को हमारे पूर्वजों ने शुभेच्छा कहा है।

2. विचारणा – **गुरुमुपसृत्य वेदान्तवाक्यविचारात्मक श्रवण मननात्मिका वृत्तिः सुविचारणा।**

अर्थात् श्री सद्गुरुदेव के समीप वेदान्तवाक्य के श्रवण मनन करने वाली जो अन्तःकरण की वृत्ति है, वह सुविचारणा कहलाती है।

योगवशिष्ठ में कहा गया है कि शास्त्रविषयों का अध्ययन, मनन तथा सत्पुरुषों के साथ विवेक वैराग्य के अभ्यास पूर्वक सदाचार में लगे रहना ही विचारणा ज्ञान भूमिका है।

शास्त्रसज्जनसम्पर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम्।
सदाचार प्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा।।

अर्थात् सत्पुरुषों का साथ करने से, उनकी सेवा करने से, उनकी सदैव आज्ञापालन करने से, शास्त्रों का पठन–पाठन करने, मनन करने तथा दैवी सम्पदा रूप सद्गुरु–सदाचार के सेवन से जो ज्ञान पैदा होता है, वही विचारणा ज्ञान भूमिका है। सत्–असत्, नित्य–अनित्य का विवेक ही विवेचन करना है। अतः विवेचन के द्वारा असत और अनित्य से आसक्ति दूर हो जाती है।

इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण पदार्थों में तथा कर्मों में कामना और आसक्ति का न रहना ही वैराग्य है। इस प्रकार विवेक वैराग्य होने से मन निर्मल हो जाता है तथा वह परमात्मा के चिन्तन में लग जाता है।

3. तनुमानसा – **निदिध्यासनाभ्यासेन मनस एकाग्रतया सूक्ष्मवस्तुग्रहणयोग्यता तनुमानसा।।**

ध्यान और उपासना के अभ्यास से मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है। उसके द्वारा जो सूक्ष्म वस्तु के ग्रहण करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है उसे तनुमानसा ज्ञान भूमिका कहते हैं। सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा का चिन्तन करते–करते उस परमात्मा में तन्मय हो जाना तथा अत्यन्त वैराग्य और उपरति के कारण परमात्मा के ध्यान में ही नित्य स्थित रहने से मन का विशुद्ध होकर सूक्ष्म हो जाना ही तनुमानसा नाम की ज्ञान भूमिका है। इसे निदिध्यासन भी कहते हैं।

उपर्युक्त तीनों भूमिकायें जाग्रत अवस्था की भूमिकायें हैं। इनमें जीव तथा ब्रह्म का भेद स्पष्ट जाना जा सकता है। इनमें स्थित व्यक्ति ज्ञानी नहीं, साधक माना जाता है–

एतस्मिन्नस्थात्रये ज्ञानोत्पादनयोग्यतामात्रं सम्पद्यते न च ज्ञानमुत्पद्यते।।

क्योंकि इन तीनों अवस्थाओं में तत्वज्ञान के प्राप्ति की योग्यता प्राप्त होती है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं होता। इन तीनों भूमिकाओं में विचरता हुआ पुरुष ब्रह्म में अभेद–भाव को प्राप्त नहीं होता। परन्तु ज्ञान की प्राप्ति के लिए इनकी पहले अत्यन्त आवश्यकता होने के कारण इनकी गिनती अज्ञान की भूमिका में न होकर ज्ञान की भूमिका में ही होती है।

ज्ञानभूमिकात्वं तु ज्ञानेतरकमधिनधि कारित्वे
ज्ञातिस्यैवाधिकारित्वात।

इन तीन भूमिकाओं में स्थित पुरुष ज्ञान के अलावा कर्मों आदि का अधिकारी नहीं होता, प्रत्युत: केवल ज्ञान तत्व का ही अधिकारी होता है।

4. सत्त्वापत्ति –

निर्विकल्पब्रह्मालैक्यसाक्षात्कार: **सत्त्वापत्ति:।**

अर्थात् ब्रह्मस्वरूपैकात्मत्व का अपरोक्ष अनुभव ही सत्त्वापत्ति नाम की चौथी भूमिका है। यह साधक की सिद्धावस्था है। इस भूमिका में सिद्धमहापुरुष को 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' का वास्तविक अनुभव हो जाता है। महापुरुषों की इसी स्थिति को निर्वाण ब्रह्म की प्राप्ति कहा गया है। यथा –

योऽन्त: सुखोऽन्तराशमस्तथान्तर्ज्योतिरेव य:।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।

जो पुरुष आत्मा में ही सुखी है, आत्मा में ही रमण करता है तथा जो आत्मा में ही ज्ञानवान है, वह परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार अनुभव करने वाला ज्ञानयोगी शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है। उसका इस शरीर और संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। ब्रह्मज्ञानी के अन्त:करण में शरीर और अन्त:करण सहित यह संसार स्वप्न के समान भासने लगता है। राजा जनक, याज्ञवल्क जी, राजा अश्वपति आदि इसी चौथी ज्ञान की भूमिका तक पहुँचे कहे गये हैं।

5. असंसक्ति –

सविकल्पकसमाध्यभ्यासेन निरुद्धे
मनसि निर्विकल्पकसमाध्यवस्थासंसक्ति:।।

अर्थात् सविकल्पक समाधि के अभ्यास के द्वारा मानसिक वृत्तियों के निरोध से जो निर्विकल्पक समाधि की अवस्था होती है, उसे असंसक्ति कहते हैं। इसे सुषुप्त भूमिका भी कहा जाता है। इस भूमिका में ब्रह्म से अभेद भाव प्राप्त होने से भूला सा बना रहता है। परंतु किसी अन्य के याद दिलाने पर उपदेश भी करता है तथा शरीर सम्बन्धी कर्म भी करता है।

अस्यामवस्थायां योगी स्वयमेव व्यक्तिष्ठते।।

परम वैराग्यता के कारण ब्रह्मप्राप्त महात्मा का इस संसार और शरीर से सम्बन्ध टूट जाता है, इसी कारण इस पांचवीं भूमिका को असंसक्ति कहा जाता है। ऐसा महात्मा का संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह कर्म करे और न भी करे कोई फर्क नहीं पड़ता। श्री जड़भरत जी इसी भूमिका में स्थित रहा करते थे।

6. पदार्थाभावनी –

असंसक्तिभूमिकाभ्यासपाटवाचिरं

प्रपंचापरिस्फूर्त्यवस्था पदार्थाभावनी।।

योगी को असंसक्ति ज्ञान भूमिका में परिपक्वता के बाद प्रपंचों आदि का स्फुरण नहीं होता, उसी अवस्था को पदार्थाभावनी भूमिका कहते हैं। असंसक्ति में स्फुरण का अभाव थोड़े समय तक ही रहता है परंतु पदार्थाभावनी भूमिका स्फुरण होने अभाव दीर्घकाल तक रहता है। इसी कारण इस अवस्था को गाढ़सुषुप्ति के नाम से पुकारते हैं। इस क्रिया में महापुरुष शरीर सम्बन्धी क्रियायें नहीं करता परन्तु अगर दूसरा करवाने का प्रयत्न करे तो कर अल्पता में कर लेता है। यथा –

अस्यामवस्थायां परप्रयत्नेन योगी व्युतिष्ठते।।

अन्य के द्वारा व्युत्थान पाकर वह क्रिया करता है। दूसरा कोई अगर उसके मुँह में ग्रास दे दे तो उसे खाने की चेष्टा करता है इत्यादि। महापुरुष की हर समय समाधि लगी रहती है। श्वास आते जाते रहते हैं। ऐसी अवस्था में अगर कोई उससे ब्रह्मज्ञान के प्रश्न पूछे तो उसके उत्तर दे देता है। स्वामी श्री ऋषभदेव जी इसी छटी ज्ञान की भूमिका में स्थित रहा करते थे।

7. तुरीयान्तुयर्गा –

''ब्रह्मध्यानावस्थस्य पुनः पदार्थान्तरापरिस्फूर्तिस्तुरीया।

ब्रह्मचिन्तन में रत इस महापुरुष को पुनः किसी भी समय किसी भी अन्य पदार्थ की परिस्फूर्तिका न होना, यही ज्ञान की सातवीं भूमिका तुरीया कहलाती है। इस अवस्था वाला महात्मा स्वेच्छा से अथवा परेच्छासे व्युत्थान को प्राप्त ही नहीं होता, केवल एक ही स्थिति –ब्रह्मी भूत स्थिति में ही सदा रमण करता है।

अस्यामवस्थायां योगी न स्वतो नापि परकीयप्रयत्नेन

व्यत्तिष्ठते केवलं ब्रह्मीभूत एव भवति।

छटी भूमिका बाद सप्तवीं भूमिका स्वयंमेव ही हो जाती है। ब्रह्मवेत्ता महात्मा के हृदय में संसार और शरीर के बाहर भीतर के लौकिक ज्ञान का अत्यन्त अभाव हो जाता है। उसके मन

तथा बुद्धि ब्रह्म में ही समाहित हो जाते हैं। अत: उसकी व्यत्थानावस्था न तो स्वत: होती है और न ही दूसरों के द्वारा प्रयत्न करने से हो पाती है। जैसे मुर्दा जगाने से नहीं जागता, वैसे ब्रह्म ज्ञानी तुरीयावस्था में रहता है। मुर्दे में प्राण नहीं होते परन्तु इस अवस्था में प्राण अपना कार्य करते रहते हैं। जीवन निर्वहन दूसरे लोगों के द्वारा ही होता रहता है। हर समय ब्रह्म में ही लीन रहता है तथा स्वयं ब्रह्ममय बन जाता है।

ज्ञान की प्रथम तीन भूमिकायें ज्ञान की प्राप्ति के लिए हैं जबकि तत्व ज्ञान प्राप्ति चौथी भूमिका से सातवीं तक होता है। शास्त्र कहता है – **'ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति।'** अत: ब्रह्म के जानने वालों को ज्ञानी, तत्वज्ञानी, आत्मज्ञानी तथा ब्रह्मज्ञानी आदि अनेकों नामों से पुकारा जाता है। ऐसे महात्माओं से बातचीत न होने पर, केवल मात्र उनके दर्शनों से ही मानव कृतकृत्य हो जाते हैं। श्रीसद्गुरुदेव जी बतलाया करते थे कि स्वामी मुलखराज जी महाराज इसी अवस्था में रहा करते थे।

श्री सद्गुरुदेव के पावन चरण कमलों में मेरा कोटि कोटि साष्टांग नमन! सभी गुरुभाइयों की जय गुरुदेव के साथ।

● ● ●

प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षय:
सम्यग्ज्ञानहुताशनेन विलय: प्राक्संचितागामिनाम्।
ब्रह्मात्मैक्यमवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा संस्थिता-
स्तेषां तत्त्रितयं न हि क्वचिदापि ब्रह्मैव ते निर्गुणम्।

विद्वान का प्रारब्ध-कर्म अवश्य ही बलवान होता है। उसका क्षय भोगने से ही हो सकता है। उसके अतिरिक्त पूर्व संचित और आगामी कर्मों का तो तत्वज्ञानरूप अग्नि से क्षय हो जाता है। किन्तु जो ब्रह्म और आत्मा की एकता को जानकर सदा उसी भाव में स्थित रहते हैं उनकी दृष्टि में तो वे (प्रारब्ध, संचित और आगामी) तीनों प्रकार के ही कर्म कहीं नहीं है, वे तो मानो साक्षात् निर्गुण ब्रह्म ही है।

अपने लिए नहीं, भगवान के लिए !

यहाँ सृजन करने के लिए यदि कुछ है तो वह विज्ञान का ही सृजन है। अर्थात् इस पृथिवी पर, केवल मन-बुद्धि और प्राण में ही नहीं, प्रत्युत शरीर में और इस जड़ प्रकृति में भी भगवत्सत्ता का अवतरण कराना है। हमारा उद्देश्य अहंभाव के फैलाव को रोकने वाले प्रतिबन्धों को हटाना अथवा मानव मन की कल्पनाओं या अहंकारगत प्राणवासनाओं की स्वार्थपूर्ति के लिए खुला मैदान छोड़ देना और बेरोक आश्रय प्रदान करना नहीं है। यहाँ कोई भी इसलिए नहीं है कि 'जो मन भावे करे' या किसी ऐसे संसार को रचे जिसमें हम लोग अपनी मनमानी कर सकें; यहाँ हमें तो वही करना है जो भगवान् चाहते हैं और ऐसा ही संसार रचना है जिसमें भगवदिच्छा अन्तर्निहित सत्य को प्रकट करे-वह भगवदिच्छा किसी मानव-अज्ञान से विकृत न हो। विज्ञान के इस योग में साधक को जो काम करना होता है वह कोई उसका अपना काम नहीं है जिस पर वह अपनी शर्तें भी लाद सके, प्रत्युत वह कर्म भगवान् का है और उसे वह कर्म भगवन्निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही करना होगा। हमारा योग हमारे लिए नहीं है, बल्कि भगवान के लिए है। हम जो कुछ व्यक्त करना चाहते हैं वह हमारा वैयक्तिक व्यक्तीकरण नहीं है– सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, सर्वबन्धविनिर्मुक्त वैयक्तिक अहंकार का भी व्यक्तिकरण नहीं है; यह स्वयं भगवान का व्यक्त होना है। हमारी मुक्ति, हमारी पूर्णकामता और हमारी परिपूर्णता तो भगवान के व्यक्त होने का ही एक परिणाम और अंगमात्र है और सो भी किसी अहंभाव से नहीं, न किसी अहंता-ममता से निकले स्वार्थ के लिए। यह मुक्ति, पूर्णकामता, परिपूर्णता भी हमारे अपने लिये नहीं, भगवान के लिए है!

- महर्षि अरविन्द

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुरु योग प्रशिक्षण केन्द्र
सपाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________________

____

____

आसीनो दूरं व्रजति शयनो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥

(कठोपनिषद् 1/21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों को दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।

संस्थापक :— योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वार्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सपाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586 सम्पादक : आचार्य प. (डॉ.) रामलाल शर्मा